
हम
और
हमारे बालक
श्वर प्रसाद चतुर्वेदी

हम और हमारे बालक

लेखक—

डा० राजेश्वर प्रसाद चतुर्वेदी एम. ए., पी-एच. डी.

प्राध्यापक

बलवन्त राजपूत कौलेज, आगरा

शिवलाल अग्रवाल एण्ड० कं० प्राइवेट लि०

पुस्तक प्रकाशक तथा विक्रेता

आगरा

प्रकाशक .
शिवलाल अग्रवाल एन्ड कं० प्राइवेट लि०
हौस्पिटल रोड, आगरा ।

प्रथम सस्करण : सितम्बर १९५६
मूल्य १॥)

मुद्रक :
कल्याण प्रिन्टिग प्रेस
राजामन्डी, आगरा ।

भारत के भावी नागरिकों को

विचारक सहमत है कि प्रत्येक बालक का एक स्वतन्त्र व्यक्तित्व होता है और उसका जीवात्मा एक पूर्वनिर्धारित क्रम के अनुसार विकसित होना चाहता है। हमारा कर्तव्य है कि उसके स्वतन्त्र एवं सम्यक् विकास के लिए समुचित व्यवस्था करे। मौटसौरी, किडरगार्टन आदि प्रणालियो के स्कूल इसी दिशा में किये गये प्रयत्न है।

प्रस्तुत पुस्तक को लिखने का भी केवल यही उद्देश्य है कि हम सब अपने बालको के विकास मे अधिक से अधिक सहयोग दे सके। हमें चाहिए कि बालक की प्रत्येक गति-विधि एव आवश्यकता को मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से देखे और एक सच्चे मित्र की भाँति उसकी अपेक्षित सहायता करे।

इस पुस्तक में कुछ ऐसे व्यावहारिक सुझाव है, जिनके द्वारा माता-पिता, अभिभावक, अध्यापक आदि अपने बालको के स्वरूप को और उनकी समस्याओं को समझकर उनके विकास मे सहायक हो सकते है। मेरा यह दावा नही है कि इस छोटी-सी पुस्तक मे सभी आवश्यक बाते आगई है, परन्तु इतना अवश्य है कि इस पुस्तक की सहायता से हमारे परिवार निश्चित रूप से अपेक्षाकृत अधिक सुखी हो सकते हैं।

मैंने इस पुस्तक के लिखने में Carlotte and Emil Leituer की लिखी हुई पुस्तक 'Your Child, Your Future' को अपना पथ-प्रदर्शक माना है। पूज्य प० उपेन्द्रनाथ जी चतुर्वेदी ने मुझको इस कार्य की प्रेरणा प्रदान की थी। उक्त पुस्तक के लेखको तथा दादा उपेन्द्रनाथ जी के प्रति मै नतमस्तक आभार प्रदर्शित करना अपना पुनीत कर्तव्य समझता हूँ।

हमारे बालक ही भविष्य के नागरिक बनेंगे, और उन्ही के ऊपर हमारा भविष्य निर्भर है। हमारा कर्तव्य है कि हम उन्हे इस गुरु-भार को वहन करने योग्य बना दे। इसके लिए यह आवश्यक है कि हम अपने सदाचरण द्वारा उनकी श्रद्धा के पात्र बने, और उन्हे उच्च आदर्शों के अनुसरण करने की प्रेरणा प्रदान करे।

विशेष—'बालक' से तात्पर्य लडका और लडकी दोनो ही से है। इस पुस्तक मे लिखी हुई प्रत्येक बात लड़को और लड़कियो पर समानरूप से लागू होती है।

राजेश्वर प्रसाद चतुर्वेदी।

विषय-सूची

पाठ १

माता-पिता और बालक

हमे अपने जीवन के प्रति बहुत-सी शिकायतें रहती है। कभी हम अपने देश के कर्णधारो के प्रति क्षोभ प्रकट करते है, कभी अपने पडौसियो के प्रति असन्तोष प्रकट करते है, कभी अपने रिश्तेदारों से अप्रसन्न होते है, कभी अपने साहब की बुराई करते है, कभी अपने नौकर को बुरा-भला कहते है, आदि। आप सहमत होगे कि हम अपने बालक-बालिकाओ के खिलाफ भी काफी शिकवा-शिकायत करते रहते है। ऐसे बहुत कम माता-पिता होगे जो अपने बालको से सन्तुष्ट हो, अन्यथा वे अपने बालको के बारे में कुछ न कुछ शिकायत करते ही रहते है। किसी का बालक देर से सो कर उठता है, किसी का बालक बिना स्नान किये भोजन करता है, किसी का बालक आज्ञाकारी नही है, किसी का बालक पढने मे मन नही लगाता है, आदि। कहने का तात्पर्य यह है कि माता-पिताओ को सबसे अधिक शिकायत अपनी सन्तान से ही रहती है।

आखिर क्यो? उत्तर स्पष्ट है। प्रत्येक माता-पिता अपने आपको इस पद के सर्वथा योग्य समझते है अर्थात् वे यह समझते है कि सन्तान का लालन-पालन करने की उनमे पूर्ण योग्यता है तथा वे इस कार्य मे सब प्रकार पारंगत है। आप सहमत होगे कि ऐसे माता-पिता बहुत कम है जो अपनी सन्तान को, अपने बालक-बालिकाओ को ठीक तरह से समझने का प्रयत्न भी करते हो।

प्रश्न हो सकता है कि माता-पिता के रूप मे हमें बालक को समझने की आवश्यकता ही क्या है? हम जो कहेंगे वह बालक करेगा, तथा आवश्यक शिक्षा-दीक्षा के लिए हम उसे स्कूल भेज देते है और इस दिशा में काफी खर्च भी करते है। बस, पानी यही

मरता है । यथा (१) माता-पिता के कर्तव्यो का निर्वाह करने के लिए किसी प्रकार की शिक्षा अथवा विशेषयोग्यता की आवश्यकता नही समझी जाती है, तथा (२) बालक को स्कूल मे भर्ती कराने के बाद माता-पिता प्राय: अपने कर्तव्य की इतिश्री समझ लेते है । हम निवेदन करना चाहते है कि छोटे से छोटा काम करने के लिए विशेष प्रकार की योग्यता की आवश्यकता होती है । पाँच या छ वर्ष की उम्र तक ही बालक की आदते बन जाती है, अत. स्पष्ट है कि माता-पिता की देख-रेख मे रहने के फलस्वरूप बालक के जो सस्कार बन जाते है, वे ही अन्त तक अपना प्रभाव रखते है तथा वे ही बालक की आदतो के मूल कारण बनते है । फलत. बालक के व्यक्तित्व के निर्माण मे अध्यापक वर्ग एव शिक्षा-सस्थाओं का स्थान गौण है । इस सम्बन्ध मे एक अन्य बात भी विचारणीय है । बालक पाठशाला मे एक दिन मे अधिक से अधिक ६ घण्टे रहता है, शेष समय वह अपने माता-पिता के ही सम्पर्क मे रहता है । यदि छुट्टियो को भी जोडा जाय, तो हमारे विचार से उसके स्कूल मे रहने के समय का औसत एक दिन मे ३ घण्ट से अधिक न होगा । स्पष्ट है कि बालक एक और आठ के अनुपात से अपने अध्यापक तथा माता-पिता के सम्पर्क में रहता है। अत बालक के चरित्र-निर्माण अथवा व्यक्तित्व के निर्माण मे माता-पिता का महत्त्व स्वयसिद्ध है ।

हम अनेक वस्तुओ का प्रयोग करते है । उनमे से किसी के विषय मे यह शायद ही कभी सोचते हो कि वह एक अनाडी के द्वारा बनाई गई है । उदाहरण के लिए हम शायद ही कभी यह सोचते है कि हमारे जूते को ऐसे व्यक्ति ने बनाया होगा, जो जूते के विषय में कुछ भी नही जानता है । हम अपने शरीर के फोड़े का आपरेशन किसी कुशल डाक्टर से ही करायेगे, अपनी दुखती हुई आँख को किसी जानकार को ही दिखायेगे, ज्वर की औषधि किसी योग्य वैद्य अथवा डाक्टर से ही लायेगे--यहाँ तक कि अपने बाल कटवाते समय यह देख लेंगे कि जिस दूकान मे हम जा रहे हैं, वह किसी नाई अथवा बारबर ही की दूकान है--वह दर्जी,

धोबी आदि की दूकान तो नही है । और ऐसा होना स्वाभाविक है । यदि हम योग्य एव उपयुक्त व्यक्ति के पास नही जाते, तो यह सुनिश्चित है कि हमारा काम बिगड जायगा तथा हमे हानि उठानी पड़ेगी । इतना ही नही, काम करने वाला यदि अधकचरा भी हो, तब भी हम अपने आपको खतरे मे ही समझते है । 'नीम हकीम खतरए जान' आदि लोकोक्तियाँ इसी बात की ओर सकेत करती है ।

परन्तु खेद का विषय है कि बच्चो की देख-भाल, उनके लालन-पालन के समय हम इस उपर्युक्त सिद्धान्त को भूल जाते है। लाखो, करोडो बालको की देख-भाल ऐसे माता-पिताओ द्वारा होती है, जिन्हे इस सम्बन्ध मे कुछ भी ज्ञान नही है । न वे बच्चे की मनोवृत्ति के सम्बन्ध मे कुछ जानते है, न उन्हे शिक्षा के सिद्धान्तो का कुछ भी ज्ञान होता है, परन्तु फिर भी वे अपने आपको बालक को शिक्षित करने के लिए सब प्रकार योग्य और कुशल समझते है । आप इस बात से सहमत होगे कि हम अध-कचरे माता-पिता अपने बालको के प्रति कितना अन्याय करते है ! अत. स्पष्ट है कि सफल एव योग्य माता-पिता बनने के लिए हमें बालक को शिक्षित करने से सम्बन्धित आवश्यक जानकारी होनी चाहिए हमे स्कूल या पाठशाला के अध्यापको के ऊपर ही अपने बालको को छोड कर बेफिक्र नही हो जाना चाहिए, अपितु हमे यह समझ लेना चाहिए कि बालक के चरित्र का निर्माण प्रारम्भ के पाँच या छ· वर्षो मे ही होता है । बाल्यकाल के सस्कार अत्यन्त दृढ होते है । अगले जीवन की घटनाएँ उन्हें नष्ट नही करती, अपितु दृढतर ही बना देती है, ठीक उसी तरह जिस तरह पत्थर पर लगे हुए सीमेण्ट को पानी के थपेडे बजाय बहा ले जाने के दृढ़तर चट्टान ही बना देते है ।

साराश यह है कि बाल्यकाल मे अगर बालक मे जल्दी क्रोध आ जाना, निर्दयतापूर्ण व्यवहार करना जैसा कोई अवगुण आ जाता है, तो वह जीवन-पर्यन्त न मिट सकेगा । इसका शत प्रतिशत

उत्तरदायित्व माता-पिता पर ही है, क्योंकि उसके व्यक्तित्व का, अथवा उसके चरित्र का निर्माण घर पर ही होता है, कही अन्यत्र नही ।

सारांश

प्रत्येक माता-पिता अपने आपको बालक के लालन-पालन मे कुशल समझता है । ऐसा सोचना ठीक नही । बालक का लालन-पालन एक विज्ञान है, जिसका माता-पिता को ज्ञान होना चाहिए ।

बालक के व्यक्तित्व का निर्माण प्रथम पाँच-छ: वर्षो में होता है । अतः उसका उत्तरदायित्व माता-पिता पर है, न कि स्कूल के अध्यापक अथवा किसी अन्य व्यक्ति के ऊपर ।

पाठ २

हम उत्तरदायी माता-पिता बनें

एक ओर तो माता-पिता अपने बालकों के सम्बन्ध मे इस तरह की शिकायते करते है––लडके बिगड गये है, वे बेकाबू हो गये है, वे किसी की बात न सुनते है और न मानते है, अच्छा होता अगर ये पैदा ही नही होते अथवा पैदा होते ही मर जाते, न मालूम जमाने को क्या हो गया है, आदि, आदि । दूसरी ओर लड़के-लडकियाँ अपने माता-पिता के प्रति क्षोभ प्रकट करते हुए देखे अथवा सुने जा सकते है। उनकी वचनावली के नमूने है–– बुड्ढे का माथा फिर गया है, इन्हे मालूम नही है कि जमाना कितनी तरक्की कर गया है, ये तो दिन-रात किचकिच करते रहते है, न मालूम इनसे कब पीछा छूटेगा, आदि ।

माता-पिता और पुत्र-पुत्री के मधुर सम्बन्ध मे इस प्रकार की कडवाहट क्यो और कैसे आ जाती है ? इसका दोष किस पर है ? बालक पर ? माता-पिता पर ? अथवा केवल समाज पर ? हमारे विचार से इसके उत्तर के मूल मे हमारी नासमझी ही है । बालक अपने चारो ओर जो भी देखता है, वही करता है । समाज को तो जब कभी देखता है, माता-पिता को हर घडी देखता है । अतः वह जो कुछ भी सीखता है, उसमे माता-पिता के आचरण की विशेष छाप होती है । हमारी भाषा मातृ-भाषा कहलाती है, न कि अध्यापक-भाषा अथवा समाज-भाषा । एक ही मोहल्ले मे जन्म लेने वाले दो बालक दो भिन्न भाषाएँ बोलने लगते है, क्योकि उनके माता-पिता भिन्न भाषा-भाषी है । गुजराती माता-पिता का बालक गुजराती बोलेगा और बगाली का बगाली । इसका तात्पर्य यह हुआ कि हम वही कहे अथवा करें, जो हम अपने बालक मे आशा करते है । अगर हम चाहते है कि हमारा बालक प्रातः ४

बजे सो कर उठ बैठे, तो हमारा कर्तव्य है कि हम स्वय ४ बजे सो कर उठे। यदि हम चाहते है कि हमारा बालक सिगरेट और शराब न पीये, तो उसके लिए आपको आदर्श रखना होगा। आप विश्वास कीजिए कि कोरे भाषण देने से बालक के ऊपर कोई असर नही पड़ता। मान लीजिए आप स्वय नित्य प्रात चाय पीते है, स्वाभाविक है कि आपका बालक भी आपकी तरह चाय पीना चाहेगा। अब आप उससे कहते है कि चाय मत पिया करो, चाय बुरी चीज है, वह आपसे सीधा सवाल पूछेगा कि तो तुम क्यो पीते हो ?

अब आप ही विचारिए कि आपके पास इस सवाल का क्या जवाब है, सिवाय इसके कि आप उसे डाट दे, अथवा पीट दे। पूज्य महात्मा गाधी की बात को प्राय सभी लोग मान लिया करते थे, क्योकि उनकी कथनी और करनी एक-सी थी। वह जो कहते थे, वही करते थे, अत किसी को उनके प्रति सन्देह नही होता था। अगर हम चाहते है कि हमारे बालक हमारा सम्मान करे, हमे अपना बडा समझे, हमारी बात माने, तो हमे चाहिए कि हम उनके सम्मुख आदर्श उपस्थित करे।

इस सम्बन्ध मे मै एक महत्वपूर्ण बात की ओर सकेत कर देना चाहता हूँ। मैने देखा है कि कुछ लोग अपने बच्चों को 'आप' करके सम्बोधन करते है, जैसे 'आप खा लीजिए', 'आपको भूख तो नही लगी है ?', 'आप आज स्कूल नही गये', आदि। सम्भवत वे ऐसा इस कारण करते है, ताकि उनका बच्चा उनसे 'आप' कह कर बोले। मेरे विचार से यह विचारधारा आदर्श उपस्थित करने का प्रतिवाद है। अगर आप चाहते है कि आपका बच्चा आपको तथा अपने अन्य बडो को 'आप' करके सम्बोधन करे तो आपको चाहिए कि आप अपने से बडो को आप करके सम्बोधन करे। अगर आप चाहते है कि आपका बालक अपने से बडो का सम्मान करे तो आपका कर्तव्य है कि आप अपने से बडों का सम्मान करे। आपका बालक जब आपको अपने बुजुर्गो का सम्मान करते देखेगा तो वह भी अपने बुजुर्गों का सम्मान करना

सीख जायगा। यह ठीक है कि आप उसकी इज्जत करेंगे, वह आपकी इज्जत करेगा, परन्तु आप अथवा आपका बालक ग्रपने घर में अथवा परिवार में तो सीमित नही है। आप तो एक समाजिक प्राणी हैं, अत. प्रत्येक व्यवहार मे हमारा दृष्टिकोण सामाजिक होना चाहिए। अन्यथा जो भी व्यक्ति आपके 'आप' कहे जाने वाले बालक से 'आप' नही कहेगा, वही बालक की नजरों मे गिर जायगा, अथवा आपका बालक उसके प्रति विद्रोह कर उठेगा। आप बालक से 'ग्राप' कहे और सारी दुनिया को मजबूर करे कि वह भी आपके बालक को 'आप' कह कर सम्बोधित करे, यह एक तरीका है। आप अपने बुजुर्गो से 'आप' कहे ग्रौर आपको देख कर आपका बालक भी अपने से बडों को 'आप' कहने लगे, यह एक दूसरा तरीका है। आप सहमत होंगे कि दूसरा तरीका अधिक सरल भी है और अधिक प्रभावशाली भी। और फिर भी अगर ग्रापको पहला तरीका ही अधिक पसन्द है, तो मै ग्रापसे यह पूछना चाहता हूँ कि आप 'तुम' और 'तू' शब्दो तथा उनके द्वारा प्राप्त होने वाले माधुर्य को क्यों नष्ट करना चाहते है ?

अपने बालको से व्यवहार करते समय हमे एक और बात का ध्यान रखना चाहिए--इस उम्र में हम कैसे थे तथा क्या करते थे ? हमारे जमाने मे नौटकी ग्रौर भगत का रिवाज था, हम नौटकी तथा भगत देखा करते थे, अब सिनेमा का चलन है, हमारा बालक सिनेमा देखता है और फिर भी अगर हम चाहते है कि हमारा बालक सिनेमा देखने न जाय, तो हमें चाहिए कि हम स्वय कभी भी सिनेमा न देखे। ऐसा करने से अधिक सम्भावना इसी बात की है कि ग्रापका बालक स्वय ही सिनेमा नही जायगा, ग्रौर अगर कभी चला भी जायगा, तो कम से कम सिनेमा के खिलाफ आपके भाषण का उस पर ग्रसर अवश्य होगा। जिन लोगो को अपने बालको से यह शिकायत है कि उनके बालक बहुत सिनेमा देखते है, वे अपने दिल पर हाथ रख कर कहे कि क्या वे स्वय कभी सिनेमा देखने नही जाते हैं ?

मान लीजिए हम किसी दफ्तर में काम करते है। हम वहाँ

से पेन्सिल, होल्डर, निब जैसी चीजे अपने घर ले आते है । हमारा बालक हमारी इस कारगुजारी को देखता भी है और सीखता भी है । अब अगर वह बडा होने पर अपने स्कूल से पेन्सिल आदि चुराने लगता है, अथवा आपकी जेब टटोलने लगता है, तो इसका उत्तरदायित्व किस पर है ? स्वय आप पर, उसके अध्यापक पर अथवा समाज पर ?

एक दिन मै अपनी लडकी को बाजार से कुछ मिठाई दिलाकर ला रहा था । उसने रास्ते मे ही उसे खाना शुरू कर दिया । मैने पूछा, "क्यो खाने लगी ?" वह अपने मोहल्ले के एक बच्चे का नाम लेकर बोली, " भी तो खाता है ।" मैने पूछा "क्या तेरे पिता जी भी कभी इस तरह रास्ता चलते मिठाई खाते है ?" "नही, अब मै भी नही खाऊँगी, ... तो गन्दा लडका है ।"

जब कभी हमे अपने बालक का कोई व्यवहार अप्रिय प्रतीत हो, तभी हमे शान्तिपूर्वक यह सोचना चाहिए कि यह दोष स्वय हमारे अन्दर है या नही ? यदि है तो पहले स्वय छोड दे और अगर नही है तो सोचे कि इस बालक में यह दोष क्योंकर आ गया है और बालक के मन मे इसे दोष के रूप मे बैठाने का सर्वोत्तम उपाय क्या है ? हम अगर चाहते है कि हमारे बालक उत्तरदायी नागरिक बने, तो हमे स्वय उत्तरदायी नागरिक अथवा माता-पिता बनना चाहिए ।

सारांश

बालक जो देखता है, वही करता है, जो सुनता है, वही सीखता है । अत माता-पिता को चाहिए कि बालक के सामने कभी कोई अनुत्तरदायी काम न करे । हमे चाहिए कि बालक के सम्मुख आदर्श उपस्थित करे ।

पाठ ३

बच्चों को डाटिए नहीं

बच्चो के सम्बन्ध मे सामान्यतया हमारे दो दृष्टिकोण है—वे दरिद्रता की निशानी हैं अथवा वे भगवान् के स्वरूप है। कुछ लोग बच्चों को देखकर ही नही, उनके नाम से ही परेशान हो उठते है और कुछ लोग उन्हे देखकर प्रफुल्लित ही नही हो उठते, उनकी चर्चा मात्र से प्रेम की फुहार छोडने लग जाते है। चार्ल्स लैम्ब जैसे विचार वाले व्यक्ति बालको को उस तीर के समान मानते है, जिसके दोनो ओर लोहे का फल लगा हुआ है और कुछ सहृदय व्यक्ति बालक को 'रूप सो सरूप भगवान् को' कह कर बालको के आजन्म उपासक बने रहते है।

महात्मा ईसा मसीह ने बच्चो को डाटने की मनाई की है। आखिर क्यो? कुछ महानुभाव कह देगे कि केवल भावुकतावश। अगर बच्चो को डाटा नही जायगा, तो बच्चे बिगड जायेंगे। अगर हम देखते है कि हमारा बालक गलत रास्ते पर जा रहा है तो क्या हम चुपचाप तमाशा देखते रहे? आदि। बात बिल्कुल ठीक मालूम पडती है। परन्तु विचारणीय प्रश्न यह है कि ईसा जैसे विज्ञ महापुरुष के आदेश की क्या इतनी सरलतापूर्वक उपेक्षा की जा सकती है? हमारे भारतवर्ष के आर्ष ऋषियो एव मध्यकालीन महात्माओ ने बालक रूप राम अथवा बालक कन्हैया की पूजा क्या अकारण ही की है?

बच्चो को डाटा जाय अथवा नही, इस सम्बन्ध मे किसी सुनिश्चित निर्णय पर पहुँचने के पहले हमे तीन प्रश्नों पर अच्छी तरह विचार कर लेना चाहिए :—

(१) जिसे हम गलत रास्ता समझते है, क्या वह सचमुच ही गलत रास्ता है, अथवा चूँकि बालक हमारी मर्जी के खिलाफ

काम करना चाहता है, इसीलिए वह गलत रास्ते पर जा रहा है। साधारणतया होता यह है कि जिस काम को हमने नही किया है, हम उसे गलत कहने लग जाते है। हमने ऐसे बहुत-से माता-पिता देखे है, जो शुरू मे अपने लड़के को चाय पीते देखकर घोर भर्त्सना किया करते थे, परन्तु अब स्वय दिन मे तीन बार चाय पीते है। हमने ऐसे भी माता-पिता देखे है, जो स्वय भाँग अथवा शराब के आदी है, परन्तु लड़के के हाथ मे चाय की प्याली फूटी आँख नहीं देख सकते। दिन प्रति दिन के जीवन से एक नही ऐसे अनेक उदाहरण प्रस्तुत किये जा सकते है, जब कि माता-पिता गलत और मर्जी अथवा दस्तूर के खिलाफ मे कोई फर्क नही समझते और बच्चों को डाटने लगते है।

(२) जब हमारे माता-पिता हमे डाटते थे, तब हमारे ऊपर उसकी क्या प्रतिक्रिया होती थी ? क्या हम उनकी बात मान लेते थे ? क्या हम वह काम कभी नही करते थे ?

(३) हमने अब तक जिन कामो के लिए अपने बच्चो को डाटा है, हमारे बच्चो ने क्या वे काम नही किये ?

इन उपर्युक्त तीन प्रश्नो के उत्तरो को सामने रखकर आप इसी नतीजे पर पहुँचेगे कि (१) डाट लगाने वाले माता-पिता को बालक अपना शत्रु—अपने मार्ग का रोडा समझने लगता है, तथा (२) उस काम के करने मे वह विशेष उत्साह के साथ प्रवृत्त होता है। वह सोचता है कि आखिर बात क्या है, जो ये मुझे इस काम को नही करने देते। कहने की आवश्यकता नही है कि उत्साह की यह अतिशयता ही बालको को पथ-भ्रष्ठ कर देती है।

मेरी उम्र उस समय लगभग पाँच वर्ष की थी, मै एक शादी मे गया। वहाँ मैने स्त्रियों को कुछ गालियाँ गाते सुना, मैने उन्हे याद कर लिया और गाता हुआ घर आया। मेरी मौसी ने मुझे इस जोर से डाटा कि मैं सहम कर चुप हो गया। लगभग ४-६ दिन बाद मैने अपने नौकर से पूछा कि इस चीज को गाने में क्या हर्ज है, और मौसी ने मुझे क्यो डाटा ? नौकर ने उस गाली को

स्पष्ट करते हुए मुझे बहुत-सी बाते बताई, उसने औलाद की जड़ जानने के लिए मेरे मन में एक जिज्ञासा भी उत्पन्न कर दी, जिसके फलस्वरूप मैने उस सम्बन्ध मे, बिना कुछ समझे-बूझे, अनेक बाते जानने की चेष्टा की। मुझे विश्वास है कि अन्य बालक भी इसी क्रम से बुरी बाते सीखते होगे। वे या तो नकल करके सीखते है, अथवा डाट दिये जाने पर इधर-उधर उल्टे-सीधे व्यक्तियो के पास जाकर अपनी उत्सुकता शान्त करते है।

आदम और हव्वा के फल चखने की कहानी सत्य है अथवा कल्पित, परन्तु उससे हमारे स्वभाव के सम्बन्ध मे एक महत्वपूर्ण मनोवैज्ञानिक तथ्य पर प्रकाश पड़ता है। हमे जिस काम को करने के लिए मना किया जायगा, हम वह काम अवश्य करेगे, चाहे इसे विपरीत सुझाव की प्रक्रिया कह लीजिए अथवा और कुछ। इस प्रकार काम करने की, 'ना' के खिलाफ करने की आदत हमारा जन्म जात गुण है और यह आजन्म बना रहता है। इसके साथ हमारी जिज्ञासा वृत्ति--प्रत्येक बात के सम्बन्ध मे पूरी जानकारी प्राप्त करने की इच्छा--पूर्ण वेग से काम करती है। जैसे ही आप उसकी इस वृत्ति का विरोध करते है, बालक का झुकाव आपकी ओर से हटकर अन्य किसी ऐसे व्यक्ति की ओर हो जाता है, जो उसकी जिज्ञासा-वृत्ति की तृप्ति करता है। आप स्वय चारो ओर आँखे फैलाकर देख लीजिए, आपकी समझ मे आ जायगा कि जो लोग अपने बालको को बहुत डाटते-डपटते है, उनके बालक प्राय क्यो बिगड जाते है।

तब फिर बालक को सही रास्ते पर लाने के लिए क्या किया जाय? बालक को गलत रास्ते पर जाते देखकर हम क्या चुपचाप बैठे-बैठे तमाशा देखते रहे? यह सोच ले कि वह ठगाकर खुद ठाकुर बन जायगा क्योकि "सुर्ख रू होता है इन्सॉ ठोकरे खाने के बाद"।

कहावते भी ठीक है और हमारा आपका सोचना भी ठीक है। परन्तु हर कठिनाई का रास्ता है। इस समस्या का भी हल है। हमें सबसे पहले एक बात समझ लेनी चाहिए। बालक न तो मिट्टी

का लौदा है और न लोहे का टुकड़ा, जिसे हम कुम्हार की भाँति चाहे जिस साँचे में ढाल दे अथवा लोहार की भाँति हथौड़े से ठोक-पीट कर चाहे जैसा बना दें। वास्तव में वह एक पौधे के समान है, जिसके बढने के लिए उन्मुक्त वातावरण की आवश्यकता है, और उसकी देख-रेख के लिए हमे माली के कर्तव्यो का निर्वाह करना है। पौधा खुली हवा, खुली रोशनी और पानी को पाकर खुले में बढता रहता है। जब कभी उसकी कोई टहनी बेतरतीब होकर इधर-उधर फैलने लगती है, तो माली उसे कलम कर देता है; जब कभी कोई मनुष्य अथवा पशु उसे तोडना अथवा नष्ट करना चाहता है, तभी माली दौडकर उसकी रक्षा कर लेता है। हम भी जब यह देखे कि हमारा बालक सचमुच अब बेतरतीब होकर इधर-उधर जा रहा है, अथवा किसी बुरी सगत मे पडकर गलत रास्ते पर जा रहा है, तब हमारा कर्तव्य हो जाता है कि उसे सही रास्ते पर लाने का प्रयत्न करे।

बालक को सही रास्ते पर लाना किसी नदी पर पुल बनाने के समान है। नदी को बहने का मार्ग देकर ही हम उस पर पुल बना सकते है, उसके सामने दीवाल खडी करके नही। इसी प्रकार हम बालक के मन की बात जानकर उसको सही बात बताकर ही उसे सही रास्ते पर ला सकते है, अन्यथा नही। मान लीजिए किसी कारणवश हमारा लडका शराब पीने लगा है। हमको उसकी यह आदत नापसन्द है। हर तरह से सोच-विचार कर हम इस नतीजे पर पहुँचते है कि उसकी यह आदत बुरी है। अब प्रश्न यह है कि उसकी यह आदत छूटे कैसे ? कई तरीके है—हम उसे डाट दे, घर में शराब की बोतल देखे तो उठाकर फेक दे, उसे पैसे देना बन्द कर दे, उसके मुँह से शराब की बदबू आ रही हो तो उसे घर मे घुसने न दे, आदि। परन्तु विचारणीय बात यह है कि जिन लोगो ने इन तरीको को अपनाया है, उनके हाथ क्या लगा है। लडके से अनबन हुई, लड़का चोरी करने लगा, लड़का लुक-छिप कर कभी किसी मित्र के घर जाकर, कभी वेश्या के घर पहुँचकर शराब पीने लगा, और कभी बाप से फौजदारी अथवा मुकद्मेबाजी

कर बैठा । ऐसी स्थिति मे हमें यह करना चाहिए कि किसी उपयुक्त अवसर पर लड़के से एकान्त मे बातचीत करे । उससे पूछे—तुम्हें शराब अच्छी लगती है ? तुम इसे क्यो पीते हो ? क्या चाहते हो कि हम भी तुम्हारे साथ चले ? आदि । लडका जैसे-जैसे इन प्रश्नो के उत्तर देता चले, वैसे-वैसे हम शराब पीने के अवगुण बताते जाये । हमे विश्वास है कि लड़का शराब पीना छोड देगा ।

हमारे एक मित्र डाक्टर का लड़का एक बार अपने स्कूल से किसी सहपाठी की पेन्सिल चुरा लाया । डाक्टर साहब ने बजाय डाटने के, उस लड़के से पूछा, "क्यो यह पेन्सिल कहाँ से लाये ?" "स्कूल से । एक लडका पडी छोड गया था ।" "चलो ठीक है । हमारी गरीबी को तुम इस तरह चोरी करके जल्दी ही दूर कर दोगे ।" बालक झेप गया । पूछने लगा, "तो अब क्या करूँ ?" "कल जब स्कूल जाओ तो इसे अपने साथ लेते जाना, और जिस लडके की हो उसे लौटाकर माफी माँग लेना ।" बालक ने बिना किसी प्रकार का विरोध किये अपने पिता की बात मान ली ।

इसी प्रकार की एक घटना मेरे साथ भी घट चुकी है । एक बार मै कही से एक चाकू चुरा लाया था । मेरी माता जी ने फुसलाकर मुझसे पूछा, और मैने अपनी सब कारगुजारी सुना डाली । मै जब अपनी बात पूरी कर चुका तो वे बोली कि "चलो तुम्हारी ओर से बेफिक्री हुई, अब तुम्हे पढाने-लिखाने की कोई जरूरत नही है । तुम चोरी करने मे खूब होशियार हो गये हो, चोरी करके कमा खाओगे, और अगर कभी पकडे भी गये तो जेलखाने मे सरकारी रोटियाँ खाकर अपना पेट भर लोगे ।" आप विश्वास कीजिए कि मेरे ऊपर घडो पानी पड गया, मै रोने लगा, माँ के पैरो पडकर मैने माफी माँगी और अपने कान पकडकर प्रतिज्ञा की कि अब कभी चोरी न करूँगा ।

कहने का तात्पर्य यह है कि बालक से व्यवहार करते समय हमें पूरी शान्ति और पूरे सन्तुलन से काम लेना चाहिए । उसके स्वाभिमान तथा उसकी जिज्ञासा वृत्ति की सन्तुष्टि करते हुए हम

उसको बता दे कि अमुक कार्य हितकर है तथा अमुक अहितकर। हित-अनहित पशु भी पहिचानते है, हमारा बालक भी सही बात को मान लेगा। डाटने-डपटने का न हमारे ऊपर अच्छा प्रभाव पड़ता है, और न हमारे बालक के ऊपर ही उसका अच्छा प्रभाव पडने की कोई सम्भावना है। जो माता-पिता अपने बालको को बात-बात मे डाटते रहते है, वे निश्चय ही अपने बालकों को अपना शत्रु बना लेते है। आप बालक से सीधी यह बात कहिए कि 'सत्य बोलो !' 'झूठ मत बोलो' कहकर आप झूठ की ओर उसका ध्यान ही क्यो आकर्षित करते है ? अगर वह झूठ बोलने ही लगता है, तो डाटकर आप उसे अपमानित क्यो करना चाहते है ? झूठ बोलने के अवगुण बताकर आप उसके विश्वासपात्र मित्र एव शुभ-चिन्तक क्यो नही बन जाते ?

सारांश

बालक बगीचे के पौधे की भाँति उन्मुक्त वातावरण मे विकसित होना चाहता है। अत माता-पिता को चाहिए कि माली की भाँति हम बढते हुए पौधे को देखभाल करे, डाट-डपट करके उसे अपना शत्रु न बनाये। गलत रास्ते पर जाते देखकर एक सच्चे मित्र की भाँति उसे समझा-बुझा दे।

पाठ ४

बालक के स्वाभाविक साहस को भंग न कीजिए

इस संसार मे बड़ी-बडी वस्तुएँ अनेक है। बडे-बड़े पर्वत, बड़े-बडे सागर, बडे-बड़े वृक्ष, बडे-बडे सरोवर, बड़े-बडे व्यक्ति––सभी कुछ है। जन्म लेते ही बालक अपने आपको बडे-बडो से घिरा हुआ पाता है। वह जिधर देखता है, उधर ही उसे बडे-बडे पदार्थ एव व्यक्ति दिखाई देते है। अपने मे बडो से अपने आप को चारो ओर घिरा हुआ देख कर वह अपने मन मे सहम-सा जाता है, और अपने आपको कदाचित् छोटा भी समझने लगता है। हमारा कर्तव्य है कि ऐसे वातावरण का सृजन करे कि हमारा बालक अपने आपको छोटा (बौना) समझने की बजाय एक स्वतन्त्र व्यक्तित्व वाला बडा व्यक्ति समझने लगे।

प्रत्येक बालक प्रारम्भ मे सर्वथा निरुपाय एव निसहाय होता है, और सर्वथा अपने बड़ों पर आश्रित रहता है। परन्तु प्रकृति का नियम कुछ ऐसा है कि शीघ्र ही उसके मन में स्वतन्त्रता एव स्वावलम्बन के भाव उत्पन्न होने लगते है तथा वे चाहते है कि प्रत्येक काम उनकी इच्छा के अनुसार हो। अगर हम उसकी इस स्वतन्त्र प्रकृति एव स्वतन्त्रतापूर्वक कार्य करने की प्रकृति को नष्ट नही करते है, तो बालक के स्वतन्त्र व्यक्तित्व का तेजी से विकास होने लगता है। आप ध्यानपूर्वक अपने बालक की गतिविधि को देखिए। आपको जीवन-शक्ति के दर्शन होगे। बालक अपने अनवरत परिश्रम एव निरन्तर प्रयास द्वारा बोलना, चलना आदि सब बाते बडी तेजी के साथ सीख लेता है।

आप ध्यानपूर्वक अपने बालक की तत्परता को देखिए। वह एक-एक शब्द को सीखने के लिए सौ-सौ बार प्रयत्न करता है, वह एक ही शब्द को कई-कई बार दोहराता है और थकता नहीं है।

अब आप स्वय किसी विदेशी भाषा को सीखने का प्रयत्न करके देखिए। एक शब्द का चार-छः बार से अधिक उच्चारण करते ही आप ऊब जायेगे। अब आप ही विचार कीजिए कि इस अन्तर का क्या कारण है ? आप अपने बालक की अपेक्षा शीघ्र क्यों थक जाते हैं ? आपके बालक मे आपकी उपेक्षा अधिक धैर्य एव अध्यवसाय होने का क्या कारण है ? उत्तर स्पष्ट है। हमारी शिक्षा-दीक्षा के फलस्वरूप हमारा स्वाभाविक साहस क्षीण हो चुका है। बालक के साहस सम्बन्धी इस तरह के आपको अन्य अनेक उदाहरण मिल सकते हैं। आप उसका चलना सीखना ही ले लीजिए। वह बार-बार चलने का प्रयत्न करता है, बार-बार गिरता है और प्रत्येक बार उठ कर खडा हो जाता है। बार-बार उठ कर खडे हो जाने के लिए प्रेरित करने वाला साहस बालक की उन्नति के लिए बहुत ही आवश्यक है। जैसे-जैसे हम बडे होते जाते है हमारा साहस भी कम होता जाता है। चाह तो प्रयोग करके देख ले। आप साइ-किल पर चढना सीखिए, कदाचित् आप आठ-दस बार चोट खा जाये, तो हमे विश्वास है कि आप साइकिल चलाना सीखने का विचार छोड देगे। कदाचित् आपके बालक के साहस को यदि किसी प्रकार का धक्का लग जाय, तो वह भी अपनी लगन अथवा धुन का इतना पक्का न रह जायगा। उसका साहस और उसका उत्साह मन्द पड़ जायगा।

बडे होने पर हमारा साहस क्यो कम हो जाता है ? उत्तर है— कार्य-कारण-सम्बन्ध का ज्ञान। जैसे ही हमें मालूम हो जाता है कि अमुक काम के करने मे कुछ खतरा है, वैसे ही हम उस काम को करते हुए थकने लगते है। उदाहरणार्थ, बचपन मे हम मुँडेरों पर दौडते फिरते थे, परन्तु अब उन पर चलते हुए भी झिझकते है, क्योकि हम देख चुके है कि मुँडेरों पर चलने वाले कुछ आदमी गिर पडे थे और उनके काफी चोट लग गई थी। इसका मतलब यह हुआ कि हमें चाहिए कि बालकों को कभी किसी प्रकार डर न दिखाये। मेरी नानी मुझे बचपन मे भूत व चुडैलों के बहुत किस्से सुनाया करती थी। मुझे आज दिन तक अँधेरे में डर लगता है।

आप भी विचारिए कि बहुत से अवसरों पर तथा बहुत से काम करते हुए आपको भय लगने का क्या कारण है ?

इसी प्रकार हमें चाहिए कि बालक के स्वावलम्बन को भी किसी प्रकार की क्षति न पहुँचावे । इसके लिए सीधा-सा नुस्खा है कि उसे आत्म-निर्भर होने का पूरा-पूरा अवसर दे । हमारा बालक चलना सीखने के प्रयत्न में यदि बीस बार गिरता है, तो उसे गिरने दे और अपने आप खडा होकर चलने दे, सहारा देकर चलाने का प्रयास न करे । सहारा देने से बालक पर-मुखापेक्षी हो जाता है, जिसे अग्रेजी में 'चम्मच से भोजन कराना' कहते है । हमारे एक भाई पर हमारी बड़ी माई बहुत लाड़ करती थी । जब तक वह भाई सात वर्ष का न हो गया, तब तक उसे वही अपने हाथ से खाना खिलाया करती थी । हमारे वह भाई आज पूरे ३५ वर्ष के है, परन्तु वह आज तक अपने हाथ से खाना खाकर अपना पेट नहीं भर सकते । इसका सारांश यह है कि हमें चाहिए कि बालक को प्रत्येक प्रकार की विघ्न-बाधा से स्वय ही सुलझने दें । अगर वह दरवाजे की सीढी पर चढ़ना चाहता है और ठोकर खाकर गिरता है, तो हमे चाहिए कि उसे सहारा देकर सीढ़ी पार कराने की कोशिश न करे । खाना खाते मे अगर वह आधा सामान गिरा देता है तथा अपना मुँह सान लेता है, तो उसे ऐसा करने दे ।

हमे समझ लेना चाहिए कि वह हमारी आपकी भाँति प्रत्येक काम में कुशल तो हो नही सकता, तब फिर उसे स्वाभाविक रीति से काम करना क्यो न सीखने दिया जाय । हमे एक बात भली-भाँति याद रखनी चाहिए कि प्रारम्भ मे प्रत्येक कार्य मे ही कठि-नाइयाँ आती है । धैर्य एव तत्परता के सहारे हम उन्हे पार कर सकते है । क्या आप नही चाहते कि आपके बालक मे कठिनाइयो को पार करने की पूरी हिम्मत हो ? अगर आप अभी से इस ओर ध्यान देगे तो विश्वास कीजिए आपके बालक मे प्रत्येक कठिनाइयों को पार करने का साहस होगा और उसमे अपने पैरो पर खडे होने की आदत आ जायगी । जो माता-पिता बालको मे साहस के बीज नही बोते, उन्हे हर काम मे सहारा देते है, वे मेरे विचार से बालक

के साथ घोर अन्याय करते है, उसे दुनिया में किसी काम का नहीं रहने देते । ऐसे बालक बात-बात में जरा-सी भी कठिनाई उपस्थित होने पर 'हाय ! हाय ! हाय राम ! चलियो, बचाइयो !' चिल्लाने के अतिरिक्त और कुछ नही कर पाते है । उन्हे जीवन मे बहुत कठिनाई होती है, जरा-सी भी मुसीबत उन्हे पहाड मालूम पडती है, और तनिक-सा संकट उपस्थित होने पर वे हतोत्साहित हो जाते है । 'जिनको लाड घनेरे, तिनको दुःख बहुतेरे' आदि लोकोक्तियाँ इसी ओर सकेत करती हैं । लाड का अभिप्राय अगुली पकड कर चलाने की मनोवृत्ति से है ।

सारांश

आपके बालक मे आत्म-विश्वास एवं स्वावलम्बन का होना अत्यन्त आवश्यक है । डर दिखाकर अथवा हर काम में सहारा देकर उसके स्वाभाविक साहस को कम न करे । बहुत अधिक सहारा देकर आप उसे पोच एव कायर बनाते है, वह फिर जीवन की कठिनाइयो का हिम्मत के साथ सामना न कर सकेगा ।

———

पाठ ५

बालक के स्वास्थ्य के विषय में चिन्ता करना

बालक के स्वास्थ्य के विषय मे माता-पिता के प्रायः दो दृष्टिकोण होते है, या तो वे उसके विषय मे बिलकुल चिन्ता नही करते अथवा आवश्यकता से अधिक चिन्ता करते है। चिन्ता करने से मेरा अभिप्राय डाक्टर, वैद्य को दिखाने से है। कुछ माता-पिता तो ऐसे होते है जो बालक के स्वास्थ्य की बिलकुल परवाह नही करते। अगर बालक कहता है कि आज सिर मे दर्द है, तो उनका जवाब होता है–ठीक हो जायगा। बालक उनसे सिर दर्द, पेट दर्द किसी की भी शिकायत करे, उनका एक ही उत्तर होता है––ठीक हो जायगा। दूसरी श्रेणी के माता-पिता जरा-जरा-सी बात के लिए डाक्टर, वैद्य के पास दौड़ते है तथा परेशान हो जाते है।

इस सम्बन्ध मे प्रत्येक माता-पिता को दो बाते विशेष रूप से समझ लेना चाहिए––

(१) बालक के स्वास्थ्य के विषय मे न तो अत्यधिक चिन्ता ही करनी चाहिए और न उदासीनता ही बरतनी चाहिए, तथा (२) बालक के खाने-पीने आदि का पूरा-पूरा ध्यान रखना चाहिए। हमारा यह कर्तव्य है कि हम अपने बालक को स्वस्थ और सुस्वाद भोजन खिलाये, उसे स्वच्छ वस्त्र पहनाये, उसके लिए सोने, खेलने आदि की समुचित व्यवस्था करे, आदि।

बालक के स्वास्थ्य का एक अन्य पक्ष भी है, और वह कही अधिक महत्त्वपूर्ण है––वह है बीमारी का कारण जानना। बालक के सिर मे दर्द होना, पेट मे दर्द होना, उसकी तबियत गिरी हुई रहना, उसे कब्ज बना रहना, आदि तकलीफें क्योंकर होती है?

यह एक वैज्ञानिक सत्य है कि जोर से चिल्लाने की आवाज अथवा चिन्ता करने के कारण मॉस-पेशियाँ एव रक्त-वाहिनी-नाडियों मे एक प्रकार का सकुचन-सा हो जाता है, फलस्वरूप शरीर पीला पड जाता है और सिर दर्द जैसी अनेक तकलीफ हो जाती है । आप पूछ सकते है कि बालक को चिन्ता किस बात की ? इसका उत्तर यह है--आप चाहते है कि आपका बालक अपनी कक्षा में प्रथम रहे अथवा तेज बच्चो मे उसकी गिनती हो, परन्तु ऐसा नही हो पाता । आप उसे डाटते है अथवा उसके अध्यापक उसे डाटते है । बालक चिन्तित हो उठता है । वह आपकी अथवा अध्यापक की अप्रसन्नता को दूर करने के लिए चिन्तित हो उठता है । बस, बीमारी शुरू हो जाती है । अतः माता-पिता जब कभी अपने बालक को अस्वस्थ देखें, तो उन्हें चाहिए कि वह सबसे पहिले यह जानने की चेष्टा करे कि उनके बालक को कही किसो प्रकार की किसी रूप में चिन्ता तो नही सताती है । हमारा अनुभव है कि ९० प्रतिशत से अधिक बालक इसी प्रकार की चिन्ताओं के कारण अस्वस्थ रहते है । हमे चाहिए कि अपने बालक के दिमाग को कम से कम परेशान होने दें, उसके सामने ऐसी कोई बात न कहें जिसके कारण उसे किसी प्रकार की चिन्ता हो जाय ।

मान लीजिए, आपका बालक लगभग ६ महीने से अस्वस्थ है । आप उसे कई डाक्टरो को भी दिखा चुके है, उसका ऐक्स-रे करा चुके है, उसके खून की परीक्षा करा चुके है, आदि, परन्तु बीमारी का कारण समझ मे नही आता । हमारा सुझाव है कि आप उसके स्वास्थ्य के विषय मे चर्चा करना और चिन्ता करना एक दम छोड दें । आपको चाहिए कि आप अपने आपको टटोलें । आपको मालूम होगा कि आपकी सदैव यह इच्छा रही है कि आपका बालक अच्छे नम्बरो से पास हो अथवा अध्यापकगण आपसे उसकी प्रशसा करे, परन्तु आपको इस ओर निराश ही होना पड़ा है । ऐसी स्थिति मे आपको चाहिए कि आप अपने बालक के परीक्षाफल आदि की चिन्ता छोड़ दें, तब आप देखेंगे कि आपका

बालक स्वस्थ होने लगा है। कम से कम बालक से कभी न कहिए कि तुमने अमुक गलती की थी, इसी कारण अस्वस्थ हो गये हो। इन बातो को सुनकर भी उसे सदमा होता है अथवा धक्का पहुँचता है। फलस्वरूप उसकी माँस-पेशियो, रक्त-वाहिनी-नाडियो तथा स्नायुयो मे एक प्रकार का सकोच उत्पन्न हो जाता है और बालक की तबियत गिरने लगती है।

सबसे अधिक महत्वपूर्ण एव सामान्य व्याधि है बालक को भूख न लगना। भूख लगना एक जन्म-जात आवश्यकता है, हमारी मूल वृत्ति है। बालक को अगर ठीक तरह भूख नही लगती है, तो निश्चय ही कोई खास बात है। भूख न लगने का कोई स्पष्ट कारण अगर आपकी अथवा डाक्टर की समझ मे नहीं आता, तो निश्चय ही इसका कारण मानसिक है। ये मानसिक कारण कई प्रकार के हो सकते है। यथा––

(१) हो सकता है कि आप कभी भी प्रसन्नचित्त होकर अथवा भोजन की प्रशसा करके खाना नही खाते है। आप सदैव भोजन-सामिग्री की आलोचना करते है––यह चीज ठण्डी है, यह गरम है, इसमे मिर्च अधिक है, इसमे नमक कम है, इसमे शक्कर बहुत है, इसमे खटाई कम है, आदि प्रकार की टिप्पणी करना आपका स्वभाव पड़ गया है। आपका बालक भी आपकी नक़ल करता है, इस प्रकार की आलोचना करने में उसे भी आनन्द आने लगता है। फलतः वह कभी भी प्रसन्न-चित्त होकर भोजन नही करता। बस, उसकी पाचन-शक्ति क्षीण हो जाती है। कहावत भी है 'जो रुचै सो पचै'। उसे जब कुछ रुचेगा ही नही, तब कुछ पचेगा कैसे ?

(२) हो सकता है आप अपने बालक को कोई ऐसी चीज जबरदस्ती खिलाते है, जो उसे पसन्द नही है। आपके बालक को दूध नापसन्द है। आप दूध के गुणों पर विचार करते है और आप उसे दूध पीने को विवश करते है; दूध न पीने के लिए कभी आप उसकी भर्त्सना करते है, दूध पीने के लिए कभी आप उसे विवश करते है आदि। वह बेमन दूध पी लेता है, परन्तु होता क्या है ?

'रुचै सो पचै' वाला सिद्धान्त काम करता है । दूध के प्रति उसकी घृणा के कारण उसके पेट की माँस-पेशियाँ सकुचित हो जाती है और तकलीफ शुरू हो जाती है । अन्य वस्तुओ के बारे मे भी इसी प्रकार समझ लेना चाहिए ।

अगर आप चाहते है कि आपका बालक किसी वस्तु विशेष को अवश्य खाये, तो आपको चाहिए कि उसे कई प्रकार से सुस्वाद बनाकर अथवा उसके स्वरूप को बालक की पसन्द के अनुरूप बदलकर उसे खिलाये । कोई भी वस्तु पचेगी तभी, जब बालक उसे राजी मन से खायेगा ।

(३) किसी वस्तु विशेष को न खाने के लिए आप बालक को पीट देते है । परिणाम यह होता है कि उस वस्तु को खाते समय उसके मन मे भय, घृणा और विरोध की भावनाएँ काम करती रहती है, बस, बालक के स्नायु ठीक तरह से काम करना बन्द कर देते है, और बालक की पाचन-शक्ति बिगड जाती है ।

हमे यह बात अच्छी तरह समझ लेनी चाहिए कि अस्वस्थ विचार शरीर को अस्वस्थ कर देते है । छोटे-छोटे बालको का मन और शरीर दोनो ही सुकुमार होते है । इनके मन को बहुत जल्दी धक्का लगता है और उस धक्के का तुरन्त ही शरीर पर प्रभाव पडता है ।

सारांश

अगर आपकी समझ मे बालक के अस्वस्थ रहने का कोई शारीरिक कारण समझ में नही आता है तो समझ लीजिए कि उसका कारण किसी न किसी प्रकार की चिन्ता है । चिन्ता का कारण दूर करने की चेष्टा कीजिए और धैर्य से काम लीजिए । डाक्टरो अथवा वैद्यो के चक्कर लगाने से कोई लाभ न होगा ।

भोजन को व्याख्यान का विषय न बनाइए । रसोई घर को युद्ध क्षेत्र न बनाइए । बालक को रुचि के अनुसार खाने दीजिए, उसको खाना खिलाते समय अपनी रुचि को भूल जाइए और उसकी रुचि का ध्यान रखिए । 'रुचै सो पचै' वाला नुस्खा सदैव याद रखिए ।

पाठ ६

बालक की हीनत्व भावना

आपका बालक अपने बराबर वाले अन्य बालको की अपेक्षा कम खाना खाता है, अथवा ठीक तरह से खाना नही खा पाता है और बहुत-सा सामान चारो ओर गिरा देता है, किंवा अपना मुँह सान लेता है ? आप कहने लगते है कि 'अरे ! यह तो बहुत थोड़ा खाता है, इससे तो ठीक तरह से खाना ही नही आता है, अमुक वालक को देखो, इसके ही बराबर है, परन्तु कितना अधिक खा लेता है अथवा कितनी अच्छी तरह से खा लेता है।'

क्या आपने कभी सोचा है कि आपके बालक के ऊपर इन सब बातो का क्या असर पडता है ? आपके बालक में एक विशेष प्रकार की झिझक आ जाती है, वह अन्य बालको की अपेक्षा अपने आपको ओछा अथवा छोटा समझने लगता है। शास्त्रीय भाषा में वह अपने आपको हीन समझने लगता है अथवा हीनत्व भावना से भर जाता है। फलस्वरूप वह हर समय इसी विचार में पडा रहता है कि 'अमुक काम मुझसे हो सकेगा या नही, अन्य व्यक्ति मेरे बारे में क्या सोचते है, मै तो कभी बडा हो ही न सकूँगा, इत्यादि।'

आपने देखा होगा कि बहुत से आदमी अपनी शेखी मारते रहते है, अपने बारे मे बहुत बात करते है तथा अपने बारे में बहुत बढ़ा-चढा कर कहते है। कोई अपने परिवार के सम्बन्ध में शेखी मारता है, कोई अपनी योग्यता का बखान करता है, कोई अपने पैसे की चर्चा करता है, आदि। आप ही बताइए कि आपकी ऐसे लोगों के बारे में क्या राय होती है ? आप आसानी से समझ लेते है कि अपने बारे मे बहुत और बढा चढा कर बाते करने वाला

ग्रादमी 'थोथा चना बाजे घना' के अनुसार हल्का होता है। हा सकता है कि थोडे समय तक ऐसे लोगों की रगबाजी काम कर जाय, परन्तु जब कलई खुलती है, तो बड़ी भद्द होती है।

अब आप यह विचारिए कि लोग आखिरकार शेखी क्यों मारते है? अपने बारे में चर्चा क्यों करते है? आप देखेगे कि जो लोग अपने आपको छोटा समझते है, उनके मन मे यह भावना घर कर जाती है कि सब लोग उन्हे छोटा समझते है। उनका अह भाव अपना विस्तार चाहता है, अर्थात् अपने ग्रापको छोटा समझने की उनके मन पर यह प्रतिक्रिया होती है कि वे अपने आपको बडा बताने के लिए उत्सुक हो उठते है। इस प्रकार शेखी मारना हीनत्व भावना की प्रतिक्रिया ठहरता है। आप सहमत होंगे कि जिन महापुरुषों के सम्बन्ध में समाज चर्चा करता है वे लोग अपने विषय में चर्चा करते हुए कभी नही देखे जाते है। पाठक क्षमा करे! आपने देखा होगा कि दफ्तरो के बाबू लोग प्रायः इस प्रकार की बातें करते देखे जाते है, 'मैने साहब से यों कह दिया, मै यों कह कर चला आया, मैने तो कह दिया कि रख लीजिए अपनी नौकरी, मेरे घर पर बहुत रोटियाँ है, आदि।' आप सहमत होंगे कि बार-बार डाट खाने से जो अह भाव पर चोट पडती है, उसकी प्रतिक्रिया इस प्रकार की आत्मश्लाघा के रूप मे प्रकट होती है। कहने की आवश्यकता नही है कि 'अपने मुँह मियाँ मिट्ठू' के प्रति शायद ही किसी के मन में इज्जत रहती हो।

हमारी यह हीनत्व भावना अन्य रूपो मे भी काम करती रहती है। हम प्रत्येक व्यक्ति के सामने ग्रपने आपको छोटा समझने लगते है, किसी के सामने ठीक तरह बात नही कर सकते है, हरेक ग्रादमी की स्थिति के साथ अपनी स्थिति का मुकाबिला करने लगते है, हम बहुत ज्यादा खुशामद करना सीख जाते है, हम आवश्यकता से अधिक सकोचशील बन जाते है, छोटे-छोटे लाभ-हानि का ढिढोरा पीटने लगते है, समाज के प्रतिष्ठित आदमियों से ग्रपनी रिश्नेदारी बताने लगते है, सम्भावित व्यक्तियों के साथ

अपनी पुरानी दोस्ती सिद्ध करने लगते है, इत्यादि । आप कहेगे कि तब तो दुनिया के प्राय: सभी लोग इस हीनत्व भावना से ग्रसित बने रहे है । मेरा उत्तर है कि आप बिलकुल ठीक सोचते है । हम साँप को मारने दौडते है, परन्तु चूहे को नही । आखिर क्यों, जब कि चूहे का मारना कही अधिक आसान है ? उत्तर स्पष्ट है कि हम साँप से डरते है और यह भय का भाव हिसा के भाव को जन्म देता है । हम मौका पाते ही किसी को क्यों सताना चाहते हैं ? क्योंकि हमे अन्य लोग सताते है, उन पर हमारा वश नही चलता है । जो हम से निर्बल है, उन पर सवार हो जाते है । अब आप इसी दृष्टि से लोगों के ओछे व्यवहारों का विश्लेषण कर जाइए, आपकी समझ में सब कुछ आ जायगा ।

इसका सारांश यह हुआ कि दुनिया की अधिकाश , बुराइयाँ इसी हीनत्व भावना से उत्पन्न होती है । हमारे भीतर अगर हीनत्व भावना न हो, तो बहुत से अवगुण हम से कोसो दूर बने रहे । पाठक समझ ले कि शील, सहनशीलता, विनम्रता आदि सद्गुण हीनत्व भावना के ठीक विपरीत है । शील, सहिष्णुता एवं विनम्रता बलशालियो अथवा बडो के गुण है, हीनत्व भावना छोटे मन का मैल है, तथा कायरता एव क्रोध दुर्बलो के आभूषण हैं । अस्तु ।

हीनत्व भावना बच्चे में दो प्रकार से घर करती है––(१) जब माता-पिता डाट-डपट करे तथा (२) जब स्वय माता-पिता में हीनत्व भावना हो । डाट-डपट अथवा भर्त्सना के फलस्वरूप तो बालक अपने आपको हीन समझने ही लगता है, परन्तु माता-पिता की हीनत्व भावना बालक के मन के भीतर किस प्रकार घुस जाती है, यह एक विचारणीय प्रश्न है । माता-पिता की हीनत्व भावना बालक के मन मे दो प्रकार से बैठती है––(१) माता-पिता बालक के सम्मुख अपनी विवशताओं––निर्धनता, साधन-विहीनता आदि की सदैव चर्चा करते रहते है । फलस्वरूप बालक के मन में यह बात बैठ जाती है कि वह सर्वथा साधनहीन एव निस्सहाय है तथा ससार की छोटी से छोटी चीज उसके लिए बड़ी और अलभ्य

है । बस, बालक का उत्साह सदा-सर्वदा को मारा जाता है और उसके महत्वाकाक्षी होने का प्रश्न ही नही उठता । (२) हीनत्व भावना से बालक के प्रभावित होने का दूसरा तरीका यह है कि माता-पिता उसके सामने दून की हॉके । मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण के अनुसार बालक का अर्द्धचेतन मन तो यह भली प्रकार समझ लेता है कि उसके माता-पिता कितने पानी मे है, परन्तु उसका चेतन मन उनका अनुकरण करना चाहता है, और इस प्रकार हीनत्व भावना उसे पैतृक सम्पत्ति किवा सस्कार के रूप मे प्राप्त हो जाती है । व्यवहारिक दृष्टि से जब बालक को अपने माता-पिता की वास्तविक स्थिति का पता चलता है, तो वह अपने आपको छोटे अथवा हल्के माता-पिता की सन्तान समझने लगता है । कभी-कभी एक अन्य स्थिति भी उत्पन्न हो जाती है । अपने माता-पिता का अनुकरण करने के फलस्वरूप बालक भी अपने विषय मे बढा-चढा कर बात करने का अभ्यस्थ हो जाता है, और जब उसे यह विदित होता है कि लोग उसकी असलियत को समझ गये है, तो वह अपने मन मे बहुत छोटा बन जाता है अथवा स्वय अपनी नजरो मे गिर जाता है । ऐसी स्थिति में या तो उसके हृदय को भारी धक्का पहुँचता है और उसकी कार्य-क्षमता एकदम कम हो जाती है, अथवा अपनी हीनता पर पर्दा डालने के प्रयत्न मे 'एक झूठ को छिपाने के लिए सौ झूठ बोलना' वाली लोकोक्ति चरितार्थ करता है ।

प्रत्येक माता-पिता को गम्भीरतापूर्वक विचार करना चाहिए कि उनमें हीनत्व भावना तो नही है । अगर है, तो उन्हे उसे तुरन्त ही दूर कर देना चाहिए । इसको दूर करने का सर्वोत्तम उपाय है कि वे पहले अपनी वाणी पर सयम करे अर्थात् अपने बारे में कम से कम बात करे और फिर धीरे-धीरे अपने आपको छोटा समझना कम करे । हमे समझ लेना चाहिए कि सृष्टि की रचना परमात्मा का विशेष उपयोग है, उस उपयोग विशेष की सिद्धि के लिए ही उसका जन्म होता है । तब फिर कौन बड़ा, कौन छोटा ? जो अपने कर्तव्य का ठीक तरह से पालन करे, वही बडा

है, जो उसकी उपेक्षा करे, वही छोटा है——इस विचार-धारा का क्रमिक विकास हीनत्व भावना का उन्मूलन करके हृदय को निर्मल बना देता है। कतिपय बालकों की शारीरिक बनावट में कुछ जन्मजात त्रुटियाँ होती है, जैसे कोई बालक बौना होता है, कोई काना अथवा अन्धा होता है, कोई बहुत अधिक मोटा होता है, किसी का कोई अग अपूर्ण होता है, आदि। ऐसी स्थिति मे माता-पिता उसकी दुर्बलताओ के कारण परेशान हो जाते है, और बार-बार उसकी चर्चा करते है। माता-पिता की बातों के कारण बालक के मन मे एक प्रकार की हीनत्व भावना घर कर जाती है, वह अपनी दुर्बलता के प्रति विशेष सजग हो जाता है और प्रत्येक काम करने मे झिझकने लगता है। हमारा निवेदन है कि माता-पिता को चाहिए कि बालक की दुर्बलता की चर्चा न करके यह जानने की कोशिश करे कि बालक में कौन-सी विशेषता है, उसका कौन-सा अग विशेष रूप से क्रियाशील है। प्रकृति का यह नियम है कि वह प्रत्येक कमी को पूरा करती है, हरेक नुकसान का मुआवजा देती है।

आपने भी देखा होगा कि अन्धे व्यक्तियो की सूँघने, सुनने अथवा याद करने की शक्ति विशेषरूप से सजग होती है। इसी प्रकार बहुत से गूँगे-बहिरे लोगों में सोचने-समझने अथवा शारीरिक परिश्रम करने की विशेष शक्ति होती है। शक्ति लगभग सबको बराबर मिलती है, किन्ही व्यक्तियो मे वह अन्य सामान्य व्यक्तियो की अपेक्षा कम माध्यमों द्वारा प्रयुक्त होती है। अत. माता-पिता को देखना चाहिए कि अगर मेरा बालक अन्धा है, तो वह शक्ति जो आँखो के द्वारा काम मे नही आ रही है, कहाँ गई ? जैसे ही उन्हे विदित हो कि बालक का अमुक अग विशेष जागरूक है, वैसे ही उन्हे चाहिए कि उस अंग को विकसित करने की ओर ध्यान देने लगे।

बालक को सदैव प्रोत्साहित कीजिए। हतोत्साहित करने के दो परिणाम होते है——बालक या तो निकम्मा हो जाता है अथवा विद्रोही एव झगडालू बन जाता है।

सारांश

हीनत्व भावना अनेक अवगुणों की जननी है। बालक को इससे सदा दूर रखिए। इसके लिए दो बाते आवश्यक है—बालक की भर्त्सना न करे अथवा अन्य बालको मे उसकी तुलना करके उसे हेय न बतावे तथा स्वय अपने आपको हीन अथवा छोटा न समझे।

पाठ ७

लड़का और लड़की

हमारे समाज में लड़का और लड़की की स्थिति में बहुत बड़ा अन्तर समझा जाता है। जन्म के समय से लेकर मृत्युपर्यन्त लडकी को लड़के की अपेक्षा हीन समझा जाता है। लडकी के जन्म का समाचार पाते ही घर मे सन्नाटा छा जाता है। लडकी का बाप समाज का एक अभिशाप है, और लडकी का बाप एक गाली भी है।

लडकों से इस प्रकार की बाते प्राय: कह दी जाती है कि 'अरे ! यह काम तो लडकियाँ भी कर लेती हैं, और तुमसे नही होता है। अरे ! लडकियो की तरह रोता है। आदि।' यह क्रम आगे तक चलता रहता है। यथा--'दूसरों की बुराई करना अथवा किसी को गाली देना औरतो को ही शोभा देता है, मर्दो को नही। अरे मर्द होकर डरता है।' इत्यादि।

लडका, लडकी तथा मर्द और औरत के अन्तर को स्पष्ट करने का एक और तरीका है। उनके खेल-कूद, उनके रहन-सहन के प्रकार सर्वथा भिन्न समझे जाते है। कोई लडका अगर गुडियो से खेलता है, तो वह जनाना है, कोई लडकी अगर कबड्डी खेलना चाहती है, तो वह अभागी है। कोई औरत अगर मर्दो मे बैठती है, तो बदचलन है, कोई मर्द औरतो मे बैठता है, तो जनाना है अथवा घरघुसना है।

पति-पत्नी के सम्बन्ध को स्पष्ट करते हुए भी इसी प्रकार की बाते कही जाती है। अशिक्षित औरत को पैर की जूती कहते है, और शिक्षित उसे अर्धाङ्गिनी बताते है। प्रकारान्तर से दोनों बातो का प्राय प्रभाव समान पडता है। औरते जब मर्दो की पोशाक

पहिनती हैं, तब भी हमारे विचार से वे अपनी हीनत्व भावना का ही प्रदर्शन करती है ।

हमारे कहने का तात्पर्य यह है कि हमारे समाज मे लड़के और लडकी के सम्बन्ध में सामान्यतया ये धारणाएँ है––(१) लडकी की अपेक्षा लडका श्रेष्ठ होता है, (२) लड़के को लडकी की अपेक्षा अधिक सुविधाएँ प्राप्त होनी चाहिए, (३) लडके और लडकियों के रहने, खेलने, मनोरजन आदि के क्षेत्र एव साधन सर्वथा पृथक् है, (४) लडकी को चाहिए कि कभी भी लड़कों की बराबरी न करे तथा (५) लडके में साहस, शक्ति आदि गुणों का होना अनिवार्य है । इन धारणाओं को विभिन्न व्यक्ति विभिन्न प्रकार से व्यक्त करते है तथापि उनका परिणाम यही होता है कि लड़की मे एक प्रकार की हीनत्व भावना आ जाती है, वह सोचने लगती है कि मै लडकी क्यों हुई अथवा मै लडका क्यों न हुई । और इस प्रकार कालान्तर मे उसे अपने स्त्रीत्व के प्रति एक प्रकार की घृणा-सी हो जाती है । लडके के पक्ष मे भी इसी प्रकार के अस्वस्थ भाव उत्पन्न हो जाते है, वह अपने आपको लडकी की अपेक्षा श्रेष्ठ समझने लगता है अथवा स्त्रियो के प्रति उसके मन मे एक प्रकार की घृणा उत्पन्न हो जाती है, वह अपने अन्दर कतिपय गुणों का होना अनिवार्य समझने लगता है । फलस्वरूप उसके मन पर अथवा दिमाग पर एक प्रकार का बोझ-सा बना रहता है, और अगर कदाचित् उसमें इन गुणों––साहस आदि का अभाव हुआ, तो वह हीनत्व भावना से भर जाता है और समझ बैठता है कि वह किसी काम का नही है ।

यह सच है कि लडके और लडकी की शारीरिक बनावटे भिन्न होती है, तथा उनके स्वभावो मे भी कुछ मौलिक अन्तर होते है । इतना होने पर भी उनके स्वभावों मे एक दूसरे के लक्षण देखे जा सकते है । आपने देखा होगा कि किन्ही लडको के शरीर लडकियो की तरह सुकुमार होते है और उनमें लड़कियों जैसी आदतें–– गुड़ियों से खेलना, नाचने-गाने की ओर झुकाव, बहुत धीरे बोलना, झेंप कर बात करना, कमर में लचक देकर उठना-बैठना आदि

होती है । आपने यह भी देखा होगा कि कुछ लड़कियों में लड़को के लक्षण पाये जाते हैं—उनका शरीर कठोर होता है, उनमे पुरुषोचित साहस पाया जाता है, उनको तीर-तलवार, लड़ाई-भिडाई से प्रेम होता है आदि । हमे समझ लेना चाहिए कि ये लक्षण स्वाभाविक है । अमुक लडके अथवा लडकी के व्यक्तित्व का निर्माण इसी प्रकार हुआ है, अतः हमे किसी भी प्रकार उनकी भर्त्सना नही करनी चाहिए । बुरा-भला कहकर हम बालक को एक उलझन मे डाल देते है और उसकी समझ मे नही आता है कि वह क्या करे । अपने स्वभाव के प्रतिकूल कार्य करने मे कठिनाई का अनुभव होना सर्वथा स्वाभाविक ही है ।

हम अन्यत्र निवेदन कर चुके है कि बालक शब्द से हमारा अभिप्राय लडका और लडकी दोनों ही से है । हमे चाहिए कि दोनों की शिक्षा-दीक्षा का समानरूप से विधान करे, उनमे किसी प्रकार का भेदभाव न बरते, और इस बात का पूरा ख्याल रखे कि हमारा बालक अपने लिग को अन्य लिग की अपेक्षा श्रेष्ठ अथवा हीन तो नही समझ बैठा है, क्योकि दोनो ही स्थितियाँ हानिकारक हैं । हीन समझने के कारण वह अपने प्रति घृणा करने लगता है तथा श्रेष्ठ समझने के कारण उसके मन पर एक प्रकार का बोझा-सा लद जाता है ।

दोनों ही स्थितियों मे उसके अवयव स्वाभाविक रूप मे कार्य नही कर पाते है और बालक का विकास रुक जाता है और उसके मन मे तरह-तरह की उलझने पैदा हो जाती है । हमारा कर्तव्य है कि हम अपने बच्चों के सामने सदा इस प्रकार की बात कहे कि समाज मे लडका और लडकी तथा पुरुष और स्त्री का समान महत्व है । बाल्यकाल में उत्पन्न लिग-भेद सम्बन्धी भाव कालान्तर मे अत्यन्त दृढ़ हो जाते है । इस भेद-भावना के फलस्वरूप उनका वैवाहिक जीवन सुखकर नही हो पाता है । माता-पिता लडके-लडकी को दो नजरो में देखते है, फलस्वरूप आगे चलकर जब लडके-लडकी पति-पत्नी बनते है, तब वे एक दूसरे के प्रति सशंकित बने रहते है ।

अगर हम चाहते है कि हमारे बालक आगे चलकर श्रेष्ठ गृहस्थ अथवा कुशल नागरिक बने, तो हमें चाहिए कि लडका और लडकी मे कोई भेद न समझे, उन्हें साथ-साथ बढ़ने और पढ़ने और खेलने दें तथा उनके शरीर की बनावट की भिन्नता से सम्बन्धित जो विचार उनके मन में आये, उन्हे अत्यन्त सावधानी के साथ दूर करने का प्रयत्न करे ।

सारांश

लडके और लडकी को समान समझिए। स्वाभाविक रूप से उनका विकास होने दीजिए। उनकी आवश्यकताओ का ध्यान रखिए और उन्हे किसी साँचे विशेष में ढालने का प्रयास न कीजिए। लड़की के लालन-पालन मे विशेष सावधानी की आवश्यकता है ।

पाठ ८

भाई और बहिन

अपनी अवस्था के अनुसार प्रत्येक बालक की परिवार मे एक विचित्र स्थिति होती है--वह या तो सबसे बड़ा होता है अथवा सबसे छोटा होता है अथवा बीच का होता है । इन स्थितियों के बालको को मनोदशाएँ और मनोवृत्तियाँ भी भिन्न होती है । बालक जब अकेला अथवा इकलौता होता है, तब तो उसकी गति सर्वथा ही भिन्न हो जाती है ।

मनोविज्ञान विशारदो ने इसी स्थिति-भेद के अनुसार बालको की चार श्रेणियाँ बताई है । यथा--

(१) इकलौता बालक ।
(२) सबसे बडा बालक ।
(३) बीच का बालक ।
(४) सबसे छोटा बालक ।

अब हम इन चारो प्रकार के बालकों की स्थिति, समस्या आदि पर पृथक्-पृथक् विचार करते है ।

(१) इकलौता बालक--इकलौते बालक को उन लोगों के साथ रहना पड़ता है, जो सब के सब अवस्था मे उससे बडे है । वयोवृद्धो के साथ बालक का सदैव रहना, खेलना, खाना-पीना सर्वथा अस्वाभाविक है । अतः बालक को कभी इकलौता तो होना ही नही चाहिए । परन्तु हम यह भी जानते है कि ससार में अनेक इकलौते बालक है । इतना ही नही, प्रत्येक सबसे बडे बालक को कुछ समय तक इकलौते बालक के रूप मे रहना ही पड़ता है ।

इकलौते बालक पर पूरा परिवार लाड करता है, और वह एक प्रकार से परिवार के आकर्षण का केन्द्र अथवा परिवार का

सबसे अधिक महत्वपूर्ण व्यक्ति बन जाता है । वह भी ऐसा ही समझने लगता है । उसकी नजर मे यह एक सामान्य बात बन जाती है कि सबकी नजर उसी पर रहे तथा वही सबसे अधिक महत्वपूर्ण व्यक्ति समझा जाय । जब कभी भी इस लाड-प्यार अथवा उसके महत्त्व की स्वीकृति मे जरा-सी भी कमी आ जाती है, तभी बालक समझ बैठता है कि उसका अपमान हो रहा है, उसकी उपेक्षा की जा रही है, और वह खीझ उठता है । सारांश यह है कि इकलौते बालक का अह बहुत बढ जाता है ।

इकलौते बालक को सब प्यार करते है, प्रत्येक व्यक्ति उसका कुछ न कुछ काम करता रहता है । इस प्रकार वह हर काम के लिए दूसरों की ओर देखने का अथवा दूसरो से सहायता प्राप्त करने का अभ्यस्त हो जाता है । परिणाम यह होता है कि आगे चलकर जब वह जीवन मे प्रवेश करता है, तब उसे छोटे से छोटे काम मे बहुत बड़ी कठिनाई दिखाई देती है । छोटा काम भी उसे पहाड के समान दिखाई देता है । जिनको 'लाड घनेरे, तिनको दुख बहुतेरे' वाली लोकोक्ति सम्भवत: इकलौते बालको के लाड-चाव की ओर ही सकेत करती है । इतना अधिक लाड-प्यार न करे कि वह किसी काम को करने योग्य न रह जाय अथवा बिगड जाय । माता-पिता उसके मुँह को ही हमेशा देखते रहते है और उसकी सुन्दरता की प्रशसा करते रहते है, वे उसके प्रत्येक काम को बहुत ही ध्यान से देखते और उसकी सराहना करते है, वे उसकी प्रत्येक बात को बहुत ध्यान से सुनते है और उसकी बुद्धि की तारीफ करते अघाते नही है, आदि । इस सबका परिणाम यह होता है कि बालक अपने आपको अन्य बालको को अपेक्षा अधिक श्रेष्ठ अथवा सर्वथा भिन्न एव सर्वोपरि समझने लगता है । इसके अतिरिक्त वह अपनी अवस्था के बालको के साथ नही रहता है, इस कारण भी वह अपने आपको अन्य बालको की अपेक्षा भिन्न समझने लगता है । परन्तु कालान्तर मे, जीवन मे प्रवेश करते समय, जब उसे अन्य बालकों के ही साथ रहना पड़ता है, उन्ही की भाँति सब काम करने पडते है, तब उसके अह को चोट लगती है, मानो वह ऊपर

से नीचे गिर पडता है। समाज के साथ घुलने-मिलने में उसे झिझक भी होती है और कठिनाई भी। मै स्वय अपने भाइयों में सबसे बडा हूँ, बहुत समय तक इकलौता बालक रहा हूँ। मै अभी तक यही चाहता रहता हूँ कि सब लोग मेरा ख्याल रखे, मै जो चाहूँ वही हो, मेरे सिर का दर्द सबके लिए सिर दर्द बन जाय, आदि।

जब तक बालक बहुत छोटा रहता है, तब तक वह घर की चहार दीवारी मे बना रहता है और घर वाले उसके मुँह की ओर देखते रहते है। बडा होने पर वह स्कूल जाता है, वहाँ वह अन्य बालकों से मिलता है। उसे मालूम होता है कि अन्य अनेक बालक ऐसे है जो उसकी अपेक्षा अधिक सुन्दर है, स्वस्थ है, बुद्धिमान् हैं। इतना ही नही, वे अपना काम अपने आप कर लेते है, जबकि स्वय उसे छोटे से छोटे काम के लिए किसी न किसी की सहायता की आवश्यकता पडती है। बस, बालक के दिल को धक्का लगता है, हीनत्व भावना उसके मन मे घर करने लगती है। इस प्रभाव की प्रतिक्रिया कई रूपों मे होती है--वह शर्मीला हो जाता है, वह सुस्त हो जाता है, अपनी ओर अन्य व्यक्तियो का ध्यान आकर्षित करने के लिए वह कभी लड़ने लगता है, कभी चिल्लाने लगता है, कभी बिना मतलब हँसने लगता है, आदि। सारांश यह है कि वह अपने आपको एक सागर में खोया हुआ पाता है, और अपनी इच्छा की सन्तुष्टि के लिए गलत तरीके काम में लाना शुरू कर देता है, ऊट-पटाग काम व बातें करने लगता है, अन्य लडके उसे बनाने लगते है, उसका व्यवहार विचित्र हो जाता है। हमें समझ लेना चाहिए कि विचित्र व्यवहार निराशा के फलस्वरूप होता है। इकलौते बालक प्राय: दुनियादार नही होते है। वे चाहते है कि दुनिया उनकी फिक्र रखे, पर दुनिया के पास इतनी फुरसत कहाँ है? जिन बालकों की बहुत देख-भाल होती है, उनकी दुनिया दूसरी हो जाती है। वे जब इस दुनिया मे आते है, तो उनके विचित्र व्यवहार पर दुनिया हँसती है। इकलौते बालक को आप इन लक्षणों के द्वारा सरलतापूर्वक पहचान सकते है--वह अपने बारे में बहुत बाते

करता है, अपनी शेखी मारता है, बात-बात मे नाराज हो जाता है अथवा रूठ जाता है, जरा सी तकलीफ होने पर हाय ! हाय ! करने लगता है, आदि ।

(२) सबसे बडा बालक––सबसे बडा बालक कुछ समय तक इकलौता बालक रहता है। अत: उसकी स्थिति बहुत कुछ इकलौते बालक के समान होती है । हाँ, इतना अवश्य है कि उसके सुधार के लिए काफी गुंजाइश रहती है ।

अकेला होने के कारण, यह सबसे बडा बालक कुछ समय तक सबकी आँखों का केन्द्र बना रहता है । भाई अथवा बहिन के जन्म लेते ही उसकी देख-रेख मे कमी आ जाती है, कम से कम माता की ओर से देख-भाल मे निश्चित रूप से कमी हो जाती है, क्योंकि माता अब नवजात शिशु में व्यस्त हो जाती है। बडा बालक समझता है कि इस नवजात बालक के कारण ही उसके लाड-प्यार अथवा महत्व में कमी हो गई है । अत: यह स्वाभाविक ही है कि वह अपने इस छोटे भाई अथवा बहिन को अपना शत्रु समझने लगता है । इस परिस्थिति मे बडे बालक के आचरण मे यकायक परिवर्त्तन हो जाता है । वह जिद्दी अथवा बद्‌तमीज हो जाता है, वह जरूरत से ज्यादा ऊधमी अथवा शैतान हो जाता है––कभी वह अपने कपडे गीले कर लेता है, कभी बिछौने भिगो देता है । तात्पर्य यह है कि वह किसी न किसी प्रकार सब लोगो का, विशेष-कर माता का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करना चाहता है । वह सोचने लगता है कि उसकी इज्जत मे, उसके महत्व मे कमी आ गई है तथा माता ने उसको धोखा दिया है । साराश यह है कि छोटे भाई-बहिन के जन्म के फलस्वरूप परिवार वालो का प्यार बँट जाता है, इसके कारण बडे बालक को सदमा पहुँचता है––एक प्रकार की निराशा होती है ।

माता-पिता यदि थोडी सावधानी से काम ले तो बालक को इस सदमे से बचाया जा सकता है । उन्हे चाहिए कि बालक को नये बालक के स्वागत के लिए तैयार रखें । जैसे ही नया बालक

गर्भ में आये, वैसे ही वे बालक से इस प्रकार की बाते करना शुरू कर दे--जब तुम्हारे एक छोटा भाई होगा, तुम उसे खिलाया करोगे न ? हमारा बडा भाग्य है कि तुम इतने बडे हो गये हो, तुमसे हमे बहुत सहारा मिलेगा, तुम न होते तो हमे और किसी का सहारा टटोलना पडता, तुम्हारा नया भाई छोटा-सा और कमजोर होगा, हमे उसकी बहुत देख-भाल करनी पडेगी। तू तो हमारा प्यारा बेटा (अथवा प्यारी बेटी) है, तू भी उसे प्यार करेगी, आदि। कहने का तात्पर्य यह है कि आप अपने व्यवहार के द्वारा बालक के मन मे दो बाते बैठा दीजिए--(१) बालक आपका मित्र है और आप उसकी सहायता पर निर्भर है तथा (२) नये बालक के कारण उसके प्यार में कोई कमी नही आने पायेगी।

अगर आप अपने बालक को यह मनोवैज्ञानिक पृष्ठ-भूमि तैयार कर लेते है, तो आप देखेंगे कि आपका बालक नये बालक के स्वागत के लिए उत्सुक हो उठता है, जन्म लेने पर उसका स्वागत करता है और उसके हृदय को किसी प्रकार का धक्का नही लगता, उल्टा वह प्रसन्न होता है, क्योकि उसे विश्वास है कि वह अपने परिवार के कामो में हाथ बँटाने वाला एक महत्वपूर्ण व्यक्ति है, तथा उसकी स्थिति सर्वथा सुरक्षित है। नये बालक के लालन-पालन मे उसका योग बता कर आप उसके अहं की तुष्टि कर देते है, और उसके प्रति पूर्ववत् प्यार का आश्वासन देकर आप नये बालक के प्रति उसके मन में उत्पन्न होने वाली विरोध-भावना का निराकरण भी कर देते है।

कुछ लोग कह सकते है कि छोटा-सा बालक क्या समझता है, और उससे ऐसी बाते कहने का कोई लाभ नही है। हम निवेदन करना चाहते है कि बालक सब कुछ समझता है। अगर आपका बालक केवल दो वर्ष का भी है, तब भी आपको चाहिए कि आप उसके सम्मुख ऊपर बताये ढग से बातें करें और नये भाई-बहिन के स्वागत के लिए उसे तैयार कर लें। नये बालक के आगमन के सम्बन्ध में आप उससे कभी कोई गलत अथवा झूठी बात न कहे। ऐसा करने से आप बालक के साथ अपने सम्बन्धों को सदा-सर्वदा

के लिए बिगाड़ लेगे । आप इस रास्ते पर चल कर तो देखिए, आपके बालक पर कितनी स्वस्थ प्रतिक्रिया होती है !

जो बात सबसे बडे बालक के लिए कही गई है, उसे अन्य बालकों के लिए भी समझ ले । जिस बालक के नया भाई-बहिन होने वाला हो, उसी को उसके स्वागत के लिए इस प्रकार तैयार करते चले । आप देखेगे कि आपके बालक नये भाई-बहिन का सदैव स्वागत करते है और सबके सब आपस में खूब हिल-मिलकर रहते है ।

(३) बीच का बालक——हम यह तो देख ही चुके है कि इकलौता बालक परिवार के उसी व्यक्ति का अनुकरण करता है, जो उसे सबसे अधिक प्रभावित करता है । दूसरा बालक अन्य किसी का अनुकरण करना चाहता है । आप पूछ सकते है कि उसी व्यक्ति का क्यों नही ? यह एक बडी विचित्र बात है कि प्रत्येक बालक अपने आपको विभिन्न व्यक्तियो का बेटा-बेटी बताता है । कोई अपने चाचा से ज्यादा हिल जाता है, कोई ताऊ से, कोई दादी से, कोई नानी से, कोई बूआ से, आदि ।

पहिला बालक प्राय माता-पिता मे से एक को चुन लेता है । दूसरा बालक शेष व्यक्तियो मे से किसी को अपना बना लेता है । विभिन्न व्यक्तियों को अपना आदर्श बनाने के फलस्वरूप सगे भाई-बहिनों के स्वभावो मे काफी भिन्नता आ जाती है । आप देखेगे कि बडा बालक अगर क्रोधी है, तो छोटा बालक शान्त स्वभाव वाला होगा, बडे बालक का झुकाव अगर गणित की ओर है, तो छोटा बालक साहित्य का प्रेमी होगा । ऐसा बहुत कम होता है कि दो भाइयों अथवा बहिनों की आदते एक-सी हों अथवा उनकी रुचियाँ समान हों ।

अब मान लीजिए तीसरे बालक का जन्म हो जाता है । दूसरा बालक बीच का बालक बन जाता है । उसकी स्थिति भयकर हो जाती है । उससे बड़ा बालक उसकी अपेक्षा विकसित अधिक है, और उससे छोटे बालक पर माता-पिता का प्यार अधिक है ।

इस प्रकार वह बेचारा दोनो ओर से दबने लगता है। मनोवैज्ञानिको ने इस बीच के बालक की स्थिति Sandwich (दो पाटों के बीच मे दबी हुई चीज) के समान बताई है। माता-पिता को चाहिए कि इस बालक का विशेष ध्यान रखे, उसे सदैव उत्साहित करते रहे। उसके छोटे से छोटे सद्‌गुण को देखे और जरा-सा भी मौका पाकर उसे प्रोत्साहित करे, उसे कभी यह अनुभव न होने दे कि उसकी स्थिति नाजुक है, वह किसी प्रकार भिचा हुआ है। उसे यह विश्वास करा दे कि अपने बड़े तथा छोटे भाई-बहिनो के समान वह भी उन्हे उतना ही प्यारा है तथा परिवार का वह भी एक उतना ही महत्वपूर्ण सदस्य है।

आप सहमत होगे कि माता-पिता इन बातों का प्राय. ध्यान नहो रखते। यही कारण है कि सबसे छोटे और सबसे बडे बालक तो लाड़ में बिगड जाते है, तथा बीच के बालक का शारीरिक, मानसिक सभी प्रकार का विकास अवरुद्ध हो जाता है।

(४) सबसे छोटा बालक—तीन भाई-बहिनों मे सबसे छोटे बालक की स्थिति अब सरलतापूर्वक समझी जा सकती है। एक ओर, जहाँ अपने लिए उसे महत्वपूर्ण स्थान बनाने का प्रश्न है, उसे कठिनाइयो का सामना करना पडता है, परन्तु दूसरी ओर, जहाँ लाड-प्यार का प्रश्न आता है, वह सबसे बाजी मार ले जाता है। माता-पिता तथा परिवार के अन्य व्यक्तियो की सहानुभूति, उनकी चिन्ता तथा उनके प्यार के अतिरिक्त उसे अपने बडे भाई-बहिनो का भी दुलार प्राप्त होता है। मैने अनेक माता-पिता को अपने सबसे छोटे बालक को कोख-पोंछना अथवा कोख-पुछनियाँ कह कर अत्यधिक प्यार करते देखा है। मैंने यह भी देखा है कि अपने छोटे बालक के प्रति स्नेहाधिक्य के फलस्वरूप माता-पिता प्राय. अपने बडे बच्चो को भला-बुरा भी कह देते है। सबसे छोटा बालक प्राय. आजन्म छोटा ही बना रहता है। ऐसा बहुत कम देखा जाता है कि जो बालक अपने भाई-बहिनो मे सबसे छोटा हो, उसमें आत्म-निर्भरता, धैर्य, बुद्धि की परिपक्वता आदि गुण पाये

जाते हो । वह हमेशा अलल-बछेडा, बिटुआ, मुन्ना, खोखा, बेबी, लल्ला आदि ही बना रहता है ।

सबसे छोटे बालक के प्रति भाइयों-बहिनो का व्यवहार इस बात पर बहुत कुछ निर्भर रहता है कि उसमे तथा उससे बड़े भाई-बहिन मे कितने वर्षो का अन्तर है । अगर यह अन्तर कई वर्षो का होता है, तब तो उसके दोनों बडे भाई-बहिन उसके लिए चाचा-चाची के समान हो जाते है, और उसकी वही हालत होती है जो इकलौते बालक की होती है ।

उससे बडे भाई-बहिन और उसकी अवस्था मे अगर थोडा ही अन्तर है, तो उसकी स्थिति विचित्र हो जाती है । उसे अपने लिए मार्ग स्वयं बनाना पडता है, और वह एक प्रकार से विद्रोही बन जाता है । यह प्राय. देखा जाता है कि सबसे छोटे बालक की आदते परिवार के अन्य व्यक्तियो की अपेक्षा सर्वथा भिन्न ही होती हैं । वह अन्य व्यक्तियो की अपेक्षा अपने आपको दुर्बल पाता है, फलस्वरूप निषेधात्मक कार्य करने लगता है । उसमे एक प्रकार की हीनत्व भावना आ जाती है, और अपनी ओर ध्यान आकर्षित करने के लिए वह बहुत से ऊट-पटाग काम करने लगता है । कभी उसमें बात-बात में मचलने की आदत आ जाती है, कभी वह लोगो का अपमान करना सीख जाता है । साराश यह है कि अपनी हीनत्व भावना की पूर्ति वह अपनी मर्जी के मुताबिक काम करके या कराके करना चाहता है । यह भी देखा गया है कि ऐसे बालक कभी-कभी चोरी करना भी सीख जाते है । ऐसे बालकों (सबसे छोटे बालकों) के प्रति माता-पिता का कर्तव्य है कि उनकी हीनत्व भावना को दूर करने का, बल्कि उससे उसे दूर रखने का, भरसक प्रयत्न करें । सबसे छोटा होने के फलस्वरूप वह जिस हानि का अनुभव करता है, उसकी पूर्ति के लिए माता-पिता को चाहिए कि उसे सदैव प्रोत्साहित करते रहे और उसे स्पष्ट कर दे कि वह एक खिलौना-मात्र न होकर हम सबकी भाँति एक मनुष्य है । साराश यह है कि माता-पिता को इस बात का पूरा ध्यान रखना चाहिए कि उनकी सबसे छोटी सन्तान शीघ्रातिशीघ्र अन्य बालकों तथा

परिवार के अन्य सदस्यो की भाँति अपने पैरो पर खड़ी होना सीख जाय।

प्रश्न हो सकता है कि अगर तीन से अधिक बच्चे हो तो माता-पिता को क्या करना चाहिए ? उत्तर स्पष्ट है। सबसे पहिले और सबसे पीछे वाले बालको की स्थितियाँ तो स्पष्ट है ही, अन्य बालको को बीच के बालक की भाँति देखा जाना चाहिए। बहुत से माता-पिता यह भी कह देगे कि इन बातों की कोई आवश्यकता नही है, हाथ की सब अँगुलियाँ बराबर है, हम तो सब बालको को समान रूप से प्यार करते है। इस सम्बन्ध में हमारा निवेदन है कि हमारे अपने आपको समझा लेने से कोई काम नही चलेगा। हमें बालक की आवश्यकता के अनुसार अपने आपको ढाल कर व्यवहार करना पडेगा। बालक जिस क्रम से जन्म लेता है, उसी क्रम के अनुसार उसके विकास के लिए परिस्थितियाँ आवश्यक होती है। बालक का पालन करते समय हमे चाहिए कि स्थिति-जन्य इस अन्तर को ध्यान मे रखे। हमारा प्यार अवश्य बराबर है, परन्तु बालकों की आवश्यकताएँ तो बराबर नही हैं। अतः हमें चाहिए कि अपने प्यार को विभिन्न साँचो मे ढाल कर विभिन्न बालको के लिए उपयोगी बनाये।

सारांश

हम अपने प्रत्येक बालक के साथ समान व्यवहार नही कर सकते है। सफल माता-पिता बनने के लिए तथा अपने बालको को सफल नागरिक बनाने के लिए हमे उनकी स्थिति को समझ लेना चाहिए। बालक जिस क्रम में उत्पन्न होता है, उसी के अनुलार परिवार मे उसका स्थान निर्धारित होता है और उसी के अनुसार उसकी आवश्यकताएँ होती है। माता-पिता को चाहिए कि बालको के लालन-पालन के समय इन सब बातो का ध्यान रखे। वे यह सूत्र गाँठ बाँध ले—'अपने बालक में हीनत्व भावना मत आने दीजिए। उसे सदैव प्रोत्साहित करते रहिए।'

———

पाठ ६

कुछ विशेष अवगुण

बालक अपने परिवार के किसी न किसी व्यक्ति को अपना आदर्श बना लेता है और प्रत्येक बात में उसका अनुकरण करता है। बालक की दूसरी विशेषता यह होती है कि वह अपना हित बहुत अच्छी तरह पहिचानता है अर्थात् वह तुरन्त समझ लेता है कि अपने मन का काम कैसे कराये।

शायद ही कोई माता-पिता यह चाहे कि उसका बालक दुःखी रहे अथवा रोये। प्राय होता यह है कि रोते हुए बालक को चुप करने के लिए आप उसके मन का काम कर देते है। बस, बालक तुरन्त ही यह सूत्र पकड लेता है कि अपनी इच्छा के अनुसार काम कराने के लिए रो दिया जाय। आप देखेगे कि जैसे ही आपने किसी काम के लिए ना की और आपका बालक रो दिया, और आप पसीज गये। अत: माता-पिता को चाहिए कि रोते हुए बालक की प्रत्येक इच्छा की पूर्ति न करे। जो ठीक समझे करे, अन्यथा बालक को समझा-बुझा दे। और अगर वह फिर भी रोता है तो रोने दे। बालक समझ जायगा कि रोने से काम न चलेगा। जिस तरह डाटने-डपटने से बालक जिद्दी और छिपकर काम करने का आदी बन जाता है, उसी तरह बात-बात पर रोने वाला बालक भी उद्दण्ड बन जाता है। रोते हुए बालक से यह भी मत कहिए कि अच्छा, रोओ मत। रोओगे तो अमुक काम नही करूँगा, चुप हो जाओगे तो कर दूँगा। ऐसा करने से बालक समझ लेता है कि पहिले रो दूँ, फिर चुप होने की शर्त्त के साथ अपना काम करा लूँगा।

अगर बालक को कोई शारीरिक कष्ट है, उसे भूख लगी है, उसके कही चोट लग गई है; तब तो उसको चुप करना माता-पिता

का कर्तव्य है, परन्तु अगर वह किसी चीज के लिए जिद करके रो रहा है, तो ऐसी दशा में माता-पिता को चाहिए कि उसे चुप करने की बिलकुल कोशिश न करे। अगर आप चुप करने की कोशिश करते है, तो बालक समझ लेता है कि मै कोई महत्वपूर्ण कार्य कर रहा था, इसी कारण इनका इस ओर ध्यान गया, और इस प्रकार उस काम को करने की उसे बार-बार इच्छा होती है। इसी आधार पर बालकों के शिक्षा-सम्बन्धी इस महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त का निर्माण किया गया है कि बालक से dos (ये करो) कहो donts (ये मत करो) नही अर्थात् बालक से कहो--यह करो, वह करो, सत्य बोलो, बैठ जाओ, आदि। यह कभी मत कहो--यह मत करो, वह मत करो, झूठ मत बोलो, लेटो नही, आदि।

अगर आप चाहते है कि आपका बालक कोई कार्य-विशेष न करे तो आपको चाहिए कि उस कार्य की ओर से उदासीन हो जाये, अपने व्यवहार से ऐसा प्रकट करे मानो उस कार्य का कोई महत्व ही नही है। उस काम की कभी चर्चा तक न करे, यहाँ तक कि अगर कभी उसे उस काम को करता हुआ भी देख ले, तो नजर फेर ले, मानो वह एक व्यर्थ का काम है। आप देखेंगे कि आपका बालक बहुत से अवगुणो से अपने आप ही दूर रहने लगेगा। इस सम्बन्ध मे मुझे अपने एक मित्र के साथ घटित एक घटना याद आ जाती है--मेरे मित्र कुर्सी पर बैठे हुए अखबार पढ रहे थे। उनका लडका बाहर से दौडता हुआ आया और उसने उनकी पीठ में बड़े जोर का घूँसा मारा। वह ऐसे बन गये मानो कुछ हुआ ही नही है। बालक कुछ झेप-सा गया। थोडी देर बाद वह उनके गले से लिपट गया, उन्होने उसे प्यार कर लिया। उस दिन के बाद उनके बालक ने कदाचित् ही कभी किसी को मारा हो।

असल मे होता यह है कि माता-पिता के अज्ञान, उनकी असावधानी अथवा जल्दबाजी के फलस्वरूप बालक मे बहुत से अवगुण आ जाते है। जैसे, उदाहरण के लिए मै अपनी एक व्यक्तिगत बात कहता हूँ। मेरी लड़की से उसके नानाजी 'बेटा' कहने लगे। लडकी ने उनसे पूछा, "बेटा किसको कहते है?"

उन्होंने सीधा-सा उत्तर दे दिया, "लडक को।" "तो तुम मुझसे बेटी क्यो नही कहते हो ? पिता जी तो मुझसे बेटी कहते है।" उसका अगला सवाल था। नानाजी ने कहा, "बेटी से बेटा ज्यादा अच्छा होता है, मैं तुझसे इसीलिए बेटा कहता हूँ।" लडकी के मन मे बेटा-बेटी की समस्या उत्पन्न हो गई। जैसे ही मैने उससे 'बेटी' कहा, वैसे ही उसने मुझसे सवाल किया, "तुम मुझसे बेटा क्यों नही कहते हो ? मै बेटा क्यो नही हूँ ?" उसके इन सवालों से आप अनुमान लगा सकते है कि छोटी-छोटी बातें बालक के कोमल मन को किस प्रकार प्रभावित करती है और उनके कारण बालक व्यर्थ की कितनी उलझनो में पड जाते है। इन समस्याओं के सन्तोष-जनक उत्तर न पाने से बालक हताश हो जाते है और उनमे अनेक अवगुण आ जाते है।

अब हम कुछ ऐसे अवगुणों की चर्चा करेंगे, जो प्रायः प्रत्येक बालक में आ जाते हैं अर्थात् जो बालको को अपने माता-पिता से विरासत के रूप में प्राप्त होते है, यथा--

भय एव चिन्ता--'आत्म रक्षा' और 'भय' हमारी दो मूल वृत्तियाँ है, अर्थात् अपनी रक्षा करना तथा तनिक-सा भी खतरा उपस्थित होने पर भयभीत होना, हम जन्म के साथ सीख जाते है। जिस प्रकार यह बताने के लिए कि हमे भूख लगी है, गुरु की आवश्यकता नही होती, उसी प्रकार खतरे को देखकर भाग खडे होने की शिक्षा देने के लिए गुरु की आवश्यकता नही होती। 'भय' की यह मूलवृत्ति जब अत्यधिक विकसित हो जाती है, तब हानि-कारक सिद्ध होती है। इसके फलस्वरूप बालक डरपोक और कायर हो जाता है। उसका यह स्वभाव बन जाता है कि वह तनिक से भी खतरे से घबडा जाय, छोटी-छोटी कठिनाइयो को बढ़ाकर देखे और जरा-जरा-सी बात से अत्यधिक चिन्तित होने लगे। ऐसी स्थिति मे बालक के स्नायु और उसकी माँस-पेशियाँ अपना स्वाभा-विक काम नहीं करती और बालक का विकास रुक जाता है। माता-पिता को चाहिए कि कहानी-किस्से सुनाकर बालक के मन में भय के बीज न बोयें। बचपन में सुने हुए ये किस्से बहुत गहरे

बैठ जाते है और जन्मभर तग करते हैं। मैने बचपन मे भूतों, जुआदारियों हौवा आदि से सम्बन्धित बहुत बाते सुनी हैं। परिणाम यह है कि इनके अस्तित्व मे विश्वास न करते हुए भी मै आज दिन तक अँधेरे मे जाते हुए तथा किसी मकान मे अकेला सोते हुए डरता हूँ। जब कभी मै किसी मकान मे अकेला सोता हूँ, तभी मुझे यह चिन्ता सताने लगती है कि अगर भूत आ गया, तो क्या होगा ? इतना ही नही, जरा-सा जुकाम होते ही मैं चिन्ता करने लगता हूँ कि अगर इससे बढकर तपैदिक हो गई तो ?

वास्तव मे भय दो प्रकार के होते है––स्वाभाविक और कृत्रिम। जोर की आवाज होने पर आप चौक पडते है, आँख के सामने किसी चीज के आते ही आँख के पलक एकदम बन्द हो जाते है। यह तो हुआ स्वाभाविक भय। किसी भय अथवा खतरे की कल्पना करना किवा उसे बढा-चढाकर सोचना और फिर घबड़ा जाना, यह है कृत्रिम भय। ऊपर दिये हुए उदाहरण इसी के अन्तर्गत आते है।

खतरा अथवा भय उपस्थित होने पर तीन प्रतिक्रियाएँ हो सकती है––(१) भाग खडे हो, (२) उसका सामना करने को तैयार हो जाये, तथा (३) घबडा जाये और हाथ पर हाथ रख कर बैठ जाये। आप सहमत होगे कि तीसरी स्थिति भयावह होने के कारण सर्वथा त्याज्य है। पहली और दूसरी स्थितियों मे दो-दो स्थितियाँ हो सकती है––थोडा-सा भी भय होने पर हम भाग खडे हो तथा बहुत ज्यादा भय उपस्थित होने पर भी साहस कर भिड़ने को तैयार हो जाये। वही व्यक्ति विवेकशील समझा जायगा जो स्थिति के अनुसार कार्य कर सके। भय उपस्थित होने पर जो ठण्डे दिमाग से भय की गहराई को सोचकर अपने कर्तव्याकर्तव्य का निर्णय कर सके, हमे ऐसे ही विवेकशील बालको का निर्माण करना चाहिए, साथ ही यह याद रखना चाहिए कि भय के कारण हाथ पर हाथ रखकर बैठ जाने वाले बालक किवा व्यक्ति समाज के लिए अभिशाप है।

मै फिर दोहरा देना चाहता हूँ कि माता-पिता को चाहिए कि भूलकर भी बालक को भय न दिखाये। ऐसा करने से बालक बहुत-सी वस्तुओ एव बहुत से व्यक्तियो से अकारण डरने लग जाता है। हमारे छोटे भाई को धूप में खेलने की आदत थी। ताऊ उसे घर मे रहने के लिए यह कह कर डराते थे कि सिगी-काट पकड ले जायगा। वह जब तक १२ वर्ष का नही हो गया तब तक वह प्रत्येक दाढ़ी वाले, प्रत्येक पगडी वाले, प्रत्येक झोली वाले व्यक्ति को देखकर घर मे घुस जाया करता था। कभी ऐसा भी होता है कि बालक को अपनी डरपोक आदत का ज्ञान हो जाता है और इस कारण उसे कुछ शर्म-सी आने लगती है। ऐसी स्थिति में लोगों के मजाक से बचने के लिए वह तरह-तरह के बहाने बनाकर अपने भय को छिपाने की कोशिश करता है। हमारे एक पड़ौसी के लडके को अँधेरे में डर लगता था। एक बार रात में उसे शौच जाने की आवश्यकता पडी। वह अपनी माता जी को लेकर सण्डास की ओर गया। उसके चाचा उससे पूछ बैठे, "क्यो, अकेले जाते हुए क्या डर लगता है?" वह बोला, "नही तो! परन्तु शायद कोई कीडा-मकोडा हो, इसी कारण अम्मा को साथ मे लिये जा रहा हूँ।"

इस सम्बन्ध मे एक और बात समझ लेनी चाहिए। अगर आपको यह मालूम होता है कि आपका बालक अकारण डरने लगा है, तो डर छुटाने के लिए जल्दबाजी अथवा जोर-जबरदस्ती मत कीजिए। हमारे एक मामाजी की यह आदत थी कि वे जिस बालक को डरपोक समझते, उसी को इस प्रकार की आज्ञाएँ देते—गाय के सीग पकड लो, रात मे बाजार से दूध ले आओ, आदि। फलस्वरूप बहुत से बालक उन्हे देखकर डरने लगे थे।

आपका बालक डरपोक न बने, इसके लिए निम्नलिखित तीन बाते विशेष रूप से ध्यान मे रखिए—

(१) आप स्वय कभी किसी प्रकार से भयभीत न हो तथा चिन्ता न करें।

(२) बालक को कभी भी किसी प्रकार का भय अथवा डर न दिखाये। डाक्टर, अध्यापक, पुलिस का सिपाही, चोर, भूत आदि किसी का डर न दिलाये।

(३) बालक को जब भी कोई चीज दिखाये, तो उसके लिए उसे पहिले से तैयार कर ले। मान लीजिए, आप चाहते है कि आपका बालक अँधेरे मे जाते हुए न डरे। तो इसकी यह तरकीब है कि आप एक दो बार उसके साथ किसी अँधेरे कमरे मे जाये और वहाँ बैठकर उसके साथ कुछ काम करे। बालक अँधेरे में जाते हुए कभी भी न डरेगा।

मान लीजिए आप उसके लिए एक मिट्टी का शेर लाये है, तो आपको चाहिए कि उसके हाथ मे उसे देने के पहले आप उसे शेर के बारे में कुछ बताये और शेर को देखने के लिए उसके मन मे उत्सुकता उत्पन्न कर दे।

आपको चाहिए कि उसके सामने झूठे किस्से न सुनाये। केवल वे ही बाते करे, जिनके द्वारा उसकी जानकारी बढे और वह बडा होने पर लाभ उठा सके।

रिश्वत —आपने लोगों को बालकों से इस तरह की बाते कहते हुए प्रायः देखा-सुना होगा कि तुम हमे अगर एक मिट्ठी दो, तो हम तुम्हे सतरा अथवा चौकलेट खिलायेगे। तुम अगर हमारी गोदी मे आ जाओ, तो हम तुम्हे बाजार ले चलेगे। तुम अगर कह दो कि भाभी बुरी है, तो हम तुम्हे बडा अच्छा खिलौना देगे। तुम अगर चुप हो जाओ अथवा रोना बन्द कर दो, तो हम तुम्हे झूला-झुलायेगे, आदि। इस प्रकार की बाते करने से दो स्थितियाँ उत्पन्न हो सकती है—(१) आप अपने वचन का पालन करते है तथा (२) आप अपने वचन का पालन नही करते है। द्वितीय स्थिति में बालक झूठ बोलना सीख जाता है, इसकी चर्चा आगे चलकर करेगे। प्रथम स्थिति मे बालक के मन में बेईमानी आने लगती है। उसका दिमाग इस प्रकार विचारने लगता है, 'मै तो

इसलिए दे रहा हूँ, क्योंकि उनसे मुझे संतरा लेना है।' यह विचारधारा विकसित होकर इस रूप मे हमारे सामने आती है कि अब बालक कुछ लिये बिना कोई काम ही नही करना चाहता है। आप अगर बालक को इस प्रकार के प्रलोभन देते रहते है, तो आपको उस अवसर के लिए तैयार रहना चाहिए, जब आप उससे बाजार मे तरकारी लाने को कहे और आपका बालक उसके बदले में आपसे चार पैसे माँगने लग जाय।

माता-पिता को चाहिए कि बालक को अपनी रुचि के अनुसार काम करने दे। किसी काम को कराने के लिए जिस प्रकार उसके साथ जबरदस्ती नही करनी चाहिए, उसी प्रकार उसे किसी प्रकार का प्रलोभन भी नही देना चाहिए। रिश्वत लेने की आदत इसी प्रकार और यही से शुरू होती है। बडा होने पर वह 'कुछ लेकर काम करने' वाले नुस्खे को अच्छी तरह आजमाना चाहता है।

झूठ बोलना:—आप अपने बालक से कहते है कि 'तुम हमारे लिए एक गिलास पानी ले आओ, हम तुम्हे सिनेमा ले चलेगे।' बालक पानी ले आता है; परन्तु आप उसे सिनेमा नही ले जाते।

आप सिनेमा जा रहे है। बालक आपके साथ चलने को मचलता है। आप कह देते है—मै डाक्टर के यहाँ दवाई लेने जारहा हूँ। आपका बालक चुप हो जाता है, पदन्तु बाद में उसे मालूम हो जाता है कि आप सिनेमा गये थे।

आपका बालक आइसक्रीम खा रहा है। आप उसे डाटते अथवा पीट देते है। आपका बालक आपसे छिपाकर आइसक्रीम खाने लगता है और भूलकर भी आपसे नही कहता कि 'मै आइस-क्रीम खाऊँगा'।

आप सहमत होगे कि ऊपर लिखी हुई तीनों ही स्थितियों मे आपका बालक झूठ बोलना सीख रहा है। अगर आप चाहते हैं कि आपका बालक झूठ न बोले, तो आपको चाहिए कि स्वयं कभी भी झूठ न बोले और उसे दण्ड देकर हतोत्साहित न करें। इस सम्बन्ध में यह मूलमन्त्र याद रखें कि झूठ 'बोलने वाले पैदा नही

होते, वे यही इसी दुनिया मे तैयार होते है।' हमारा बालक भी शुरू मे सच बोलता था, परन्तु बाद मे झूठ बोलना सीख गया है। विचार करने पर मालूम होगा कि हम ही उसके इस अवगुण के कारण है।

कभी-कभी ऐसी स्थिति भी आ जाती है कि बालक के सम्मुख सत्य बोलना हानिकारक सिद्ध होता है। आप कहते है—'अमुक व्यक्ति बहुत गन्दा है।' आपका बालक भी 'कुए की झाँई' की भाँति उसे दोहराने लगता है, परन्तु आप नही चाहते कि आपका बालक यह अप्रिय सत्य कहे। इस स्थिति से बचने का सबसे सरल उपाय यह है कि बालक के सामने वह बात कभी मत कहिए जिसे आप बालक के मुख से नही सुनना चाहते है। आप बालक से यह कभी मत कहिए कि 'ऐसा और किसी के सामने न कहना।' बालक को तुरन्त एक हथकण्डा मिल जाता है। वह बात छिपाना सीखने लगता है और घरवालों से बातें छिपाना शुरू कर देता है। पहले मामूली और फिर बाद मे गम्भीर।

आप बालक से झूठ बोलते है—किसी वचन का पालन नहीं करते है, तो बालक का आप मे विश्वास नही रहता है और वह अपनी सुरक्षा के विषय में अनिश्चित होकर चिन्तित रहने लगता है। प्रत्येक बात मे वह आपकी ओर सन्देह की दृष्टि से देखने लगता है, हर काम के बारे मे उसे सन्देह बना रहता है कि होगा या नही ? बालक के विकास के लिए सुरक्षा की भावना उतनी ही आवश्यक है जितनी पौधे के लिए धूप। कभी-कभी सूर्य बादलों के पीछे छिप जाता है, परन्तु उसकी गर्मी पौधे को मुर्झाने नही देती। इसी प्रकार आपके प्रति बालक का विश्वास बालक का बहुत सम्बल है। इस विश्वास के सहारे वह बहुत से काम स्वयं अपने आप भी कर सकता है। आपको चाहिए कि अपने प्रति बालक के विश्वास मे कभी किसी प्रकार की ठेस न लगने दे, अन्यथा झूठ बोलने से उत्पन्न होने वाले समस्त अवगुण उसमें आ जायेगे और वह आप पर कभी विश्वास नही करेगा।

आप अगर ८ बजे सोकर उठते है, तो बालक से कभी न कहिए कि वह जल्दी सोकर उठे, अगर आप चाय पीते है, तो बालक से कभी न कहिए कि वह दूध अथवा लस्सी पिये। ये सब बाते उसके लिए भारस्वरूप हो जायेंगी, और वह शीघ्र ही समझ लेगा कि आप जो भी कह रहे है, सब व्यर्थ की बाते है। ऐसी परिस्थिति उत्पन्न होते ही वह बहुत बडी उलझन में पड जायगा। इसी प्रकार आप उसे कभी भी कोई गलत बात न बताये। उसे अगर एक बार भी मालूम हो गया कि आपने उसे कोई गलत बता दी है, तो उसके हृदय को धक्का लगेगा और फिर वह आपसे कोई बात नही पूछेगा।

अगर आपका बालक कोई नुकसान कर देता है, तो आप उसे पीटिए नही। आप देखेंगे कि वह आपको अपनी प्रत्येक गलती बता देगा। परन्तु अगर वह यह समझ लेगा कि सच बोलने से मुसीबत आती है और झूठ बोलने से जान बच जाती है, तो फिर वह कभी भी आपके सामने अपनी गलती स्वीकार नही करेगा, गलती छिपाने की यह आदत जन्म भर बनी रहती है। मुझे याद है कि एक बार एक महिला से दाल की देगची लौट गई। चौके मे दाल फैली हुई देखकर जब पतिदेव ने उनसे पूछा कि दाल किसने फैलादी, तब उन्होने यही जवाब दिया 'मुझे नही मालूम।' और ऐसा क्यो न हो, हमारा स्वभाव है कि प्रत्येक कार्य करते समय हम सबसे सरल रास्ता अपनाते है।

अगर आप अपने बालक को कभी झूठ बोलता हुआ देखे, तो उससे यह कभी न कहिए कि उसने कोई बहुत बुरा काम किया है, अथवा 'झूठ बोलने से हानि' विषय पर उसके सम्मुख व्याख्यान भी न देने लग जाइए। ऐसा करने से बालक के मन मे अपराध की भावना आ जाती है और उसे सदमा पहुँचता है। आप उसे स्वतन्त्रतापूर्वक रहने दीजिए। वह स्वयं झूठ बोलना बन्द कर देगा। कभी-कभी ऐसा भी होता है कि बालक किसी बात की कल्पना करता है अथवा कोई बात स्वप्न में देखता है, वह उसे सत्य के रूप

में कहता है । आप समझते है कि वह झूठ बोल रहा है और आप उससे कह भी देते है कि वह झूठ बोल रहा है । बस, आपका बालक सोचने लगता है कि जान-बूझ कर भी झूठ बोला जा सकता है ।

सारांश

बालक की गलतियो पर ज्यादा ध्यान मत दीजिए । डाट-फटकार करने से बालक में बदला लेने की भावना जाग्रत होती है ।

बालक को भय दिखाकर कोई बात मत बताइए । भय के कारण बालक आगे जीवन की कठिनाइयो में व्यर्थ ही उलझा रहता है, वह जरा-जरा-सी बात के पीछे अत्यधिक व्यग्र हो जाता है ।

बालक को रिश्वत देकर शिक्षित करने की चेष्टा मत कीजिए । आप उसमे ऐसी आदत डालिए कि किसी पुरस्कार की आशा के बिना ही वह प्रत्येक कार्य को कर डाले ।

अगर आप चाहते है कि आपका बालक सच्चा और ईमानदार व्यक्ति बने, तो उसके सामने कोई गलत बात मत कहिए, और उसके मन मे डाट-डपट, मार-पीट आदि का डर न बैठाइए । जब कभी आपका बालक झूठ बोले, तभी अपने दिल को टटोलिए—क्या मै झूठ बोला हूँ ? अथवा, क्या मैने बालक के प्रति पिछले दिनो में कभी सख्ती का व्यवहार किया है ?

पाठ १०

बालकों की उत्सुकता

प्रत्येक नई बात को जानने के लिए हम सदा उत्सुक रहते है । कभी हम किसी नई बात को खोजना चाहते है, कभी हम यह जानना चाहते है कि अमुक कार्य कैसे हुआ, उसे किसने किया तथा उसका परिणाम क्या हुआ, और कभी हम यह जानना चाहते है कि अमुक कार्य यदि इस प्रकार किया जाय तो क्या परिणाम हो अथवा यदि अमुक कार्य इस प्रकार किया गया होता तो क्या परिणाम होता ? अपनी इस उत्सुकता अथवा जिज्ञासा-वृत्ति के द्वारा ही हम विभिन्न बातों से सम्बन्धित जानकारी प्राप्त करते रहते है और हमारे ज्ञान-भण्डार की वृद्धि होती रहती है । हमारे जीवन मे से अगर क्यो, कैसे, क्या—निकाल दिये जाये तो हमारा मानसिक विकास अवरुद्ध हो जाय ।

आपने देखा होगा कि छोटे-छोटे बालक भी इसी तरह हरेक बात के सम्बन्ध मे जानने को उत्सुक रहते है । उदाहरण के लिए आपका बालक आपको बिजली जलाते हुए देख कर सामान्यतया लगातार एक के बाद दूसरा प्रश्न पूछेगा—-यह क्या है ? कैसे जलती है ? बिजली कहाँ से आती है ? उसे कौन बनाता है ? यह कैसे बनती है ? अपने आप क्यो नही जलती ? बटन को नीचे क्यो करना पडता है ? आप अगर प्रत्येक प्रश्न का उत्तर दे देते है, तब तो ठीक है, अन्यथा आपका बालक हतोत्साहित हो जाता है । इसके दो परिणाम हो सकते है—-(१) उसकी जिज्ञासा वृत्ति को धक्का लगे तथा (२) आपके प्रति उसकी श्रद्धा कम हो जाय और जानकारी प्राप्त करने के लिए वह किसी अन्य व्यक्ति को टटोले ।

एक स्थिति और हो सकती है। आप उसे किसी बात का गलत जवाब दे देते है। इसके भी दो परिणाम होते है––(१) बालक को गलत बात मालूम हो जाती है तथा (२) जब उसे मालूम होता है कि उसके पिता जी ने उसे गलत बात बताई थी, तो वह आपको झूठा समझने लगता है तथा आपके प्रति उसके हृदय में विश्वास नही रह जाता । स्पष्ट है कि मात-पिता को चाहिए कि वे अपने बालक के प्रश्नों का बहुत ही सावधानी और सचाई के साथ उत्तर दे। जो बात न मालूम हो, उसके लिए कह दे कि मालूम नही है, पूछ कर बता देगे। ऐसा करने से बालक आपको अल्पज्ञ भले ही समझे, परन्तु झूठा नही समझेगा। इतना ही नही, अपनी कमी अथवा अपनी अल्पज्ञता को स्वीकार करने का उसमें साहस भी आ जायगा।

आप बाजार के लिए रवाना हो रहे है। आपका बालक सवालो की झडी लगा देता है—कहाँ जा रहे हो? क्यों जा रहे हो? क्या लाओगे? क्यों लाओगे? मुझे क्यों नही ले चलते? मुझे कब ले चला करोगे? मै बड़ा कब हो जाऊँगा? मै अभी छोटा क्यो हूँ? आदि। आप अगर प्रत्येक प्रश्न का सन्तोषजनक उत्तर देते जाते है, तब तो आपका बालक सन्तुष्ट हो जाता है, और उसकी उत्सुकता-वृत्ति जागरूक बनी रहती है; परन्तु यदि आप उसे बीच मे ही डाटकर चुप कर देते है, तो वह सहम जाता है, उसका मन बैठ जाता है, उसका विकास रुक जाता है तथा आपके प्रति उसकी श्रद्धा कम हो जाती है।

बात टालने के लिए अथवा अपने अज्ञान को छिपाने के लिए गलत जवाब देने का क्या परिणाम होता है, इसे व्यक्तिगत उदाहरण देकर समझाता हूँ। एक बार मेरी भतीजी मेरे साथ चलने को मचल उठी। मै ने कह दिया––तू तो अपनी माता जी के ही साथ जाती है और किसी के साथ जाने में तो तुझे डर लगता है न! बस, वह उस समय चुप हो गई। परन्तु इस सुझाव देने का परिणाम यह हुआ है कि आज दिन तक––अब वह लगभग

१२ वर्ष की है—वह अपनी माता को साथ लिए बिना कहीं नहीं जा सकती।

हमारे एक अध्यापक से उनके पाँच वर्षीय बालक ने एक दिन प्रश्न किया कि नाभि (टुण्डी) की अंग्रेजी क्या होती है ? सयोग की बात उन्हें नाभि की अंग्रेजी मालूम न थी। उन्होंने चट कह दिया 'टेट्यू'। बालक ने 'टेट्यू' याद कर लिया। बडा होने पर वह स्कूल गया। उसके अध्यापक तो कह रहे थे कि नाभि की अंग्रेजी 'नेवल' होती है और वह कहे कि नही 'टेट्यू' होती है। आखिकार झुंझला कर मास्टर साहब ने उसकी पिटाई कर दी। वह रोता हुआ घर आया। घर जा कर उसने अपने पिता जी को अपने पिटने की बात सुनाई। पिता जी ने हँसकर कह दिया "मास्टर साहब ठीक कहते थे। मैं ने तो 'टेट्यू' वैसे ही कह दिया था।" पिता की बात सुनकर बालक के दिल को भारी धक्का लगा। उसने पिता को झूठा समझ लिया और उस दिन के बाद उसने फिर कभी कोई बात नही पूछी। इतना ही नही, उसने अपने सह-पाठियो के सामने सब बाते सुनाई। फलतः लडकों ने उसके पिता जी का नाम 'टेट्यू मास्टर' रख लिया।

बालक के प्रश्नों के उत्तर दे कर आप केवल उसकी जिज्ञासा को ही शान्त नही करते, बल्कि उसको शिक्षित बनाने के मार्ग को सरल बनाते है। उदाहरणार्थ, रेलगाड़ी को ही ले लीजिए। रेलगाड़ी के सम्बन्ध में बालक को जानकारी कराने के दो तरीके है—
(१) वह रेलगाडी से सम्बन्धित कोई पुस्तक पढ कर जाने कि रेलगाड़ी कब बनी, उसे किसने बनाया, वह कैसे बनती है, वह कैसे चलती है, कन्ट्रोलर ड्राइवर गार्ड आदि कौन होते है ? इत्यादि।
(२) रेलगाडी को देख कर वह आप से उसके बारे मे एक के बाद दूसरा प्रश्न करता जाय और आप उन समस्त प्रश्नो के उत्तर सावधानी के साथ देते जाये। आप सहमत होंगे कि पहले तरीके के द्वारा रेलगाड़ी के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त करने के लिए बालक को परिश्रम करना पडेगा, रेलगाड़ी उसके लिए भार-स्वरूप हो जायगी। दूसरे तरीके में रेलगाड़ी उसके लिए कौतूहल

की वस्तु होगी और उसके सम्बन्ध में जानकारी उसे एक विशेष प्रकार का सन्तोष देगी। इतना ही नही, दूसरे तरीके द्वारा वह हरेक बात को हृदयगम भी करता जायगा। बालक को शिक्षित करने का सही तरीका यही है कि आप उसे विभिन्न वस्तुएँ, स्थान इत्यादि दिखायें, और उनके सम्बन्ध में बालक जो भी प्रश्न करे, आप सावधानीपूर्वक उनके उत्तर देते जाये। अतः आपका बालक जब आपसे किसी प्रकार का प्रश्न करे, तो डाटकर उसे हतोत्साहित अथवा निराश न करे, बल्कि उसका समुचित उत्तर देकर उसकी जिज्ञासा-वृत्ति को प्रोत्साहित करे, ताकि प्रत्येक बात की तह तक पहुँचने के लिए उसकी उत्सुकता बनी रहे। तह तक पहुँचने के अभ्यस्त बालक ही आगे चलकर बड़े विचारक, दार्शनिक एव वैज्ञानिक बन सकते है। माता-पिता प्रायः बालक के प्रश्नों का उत्तर देना एक मुसीबत समझते हैं। परिणामत. बालक भी ऊपरी अथवा थोथी जानकारी से सन्तुष्ट हो जाने के अभ्यस्त हो जाते है। हमने ऐसे भी विद्यार्थी देखे है जिन्हे अपनी पाठ्य पुस्तक के लेखक के विषय में नही के बराबर जानकारी रहती है। आखिर इसमे दोष किसका है? उनके मन-मानस में उत्पन्न उत्सुकता का अकुर पल्लवित होने के पूर्व ही उनके अभिभावकों (माता-पिता आदि) द्वारा नष्ट कर दिया गया था।

प्रायः प्रत्येक बालक यह जानने को उत्सुक रहता है कि बच्चे का जन्म किस प्रकार होता है? माता-पिता बालक की इस उत्सुकता को अनुचित समझते है और इधर-उधर के जवाब देकर उसे टालना चाहते है। बालक सन्तुष्ट नहीं होता। वह अपनी जिज्ञासा की शान्ति के लिए इधर-उधर जाता है और पथ-भ्रष्ठ हो जाता है, क्योंकि लोग इधर-उधर की बाते बना कर उसे यौन-भावना का पाठ पढा देते है।

इन प्रश्नो का समुचित उत्तर न पा सकने के फलस्वरूप बालक किस प्रकार गलत रास्ते पर चले जाते है, इस बात को स्पष्ट करने के लिए मे दो व्यक्तियो के अनुभव ज्यों के त्यो प्रस्तुत करता हूँ। यथा——मैने अपनी माताजी से पूछा कि "हमारा छोटा भइया

कहाँ से आया है ?" "पेट मे से ।" "वह कैसे निकला ?" "नाभि (टुण्डी) मे होकर ।" मुझे टुण्डी के आसपास कहीं भी निकलने का रास्ता नहीं दिखाई दिया और मै सन्तुष्ट नही हुआ । दो दिन बाद मैने यही प्रश्न अपने नौकर से किया । उसने जवाब दिया कि एक प्रकार की जड़ जमीन मे लगा देने से बच्चे पैदा होते है । उसे औलाद की जड कहते है । और फिर औलाद की जड दिखाने के बहाने उसने मुझे जो कुछ दिखाया और मेरे साथ उसने जो कुछ किया, वह बताने की आवश्यकता नही है--पाठक स्वयं अनुमान लगा सकते है ।

दूसरे सज्जन का कहना है कि मैने एक बार कुत्ते-कुतिया को देखा । मैने पिता जी से पूछा, "यह क्या कर रहे है ?" उन्होने मेरे एक चाँटा रसीद कर दिया । मौहल्ले के एक अन्य सज्जन ने दो दिन बाद अकेले में उस प्रक्रिया का पूरा भाष्य किया । मै स्वय अनुभव करने के लिए चचल हो उठा । थोडे ही समय पश्चात् मै अपने मोहल्ले की मेहतरानी की लडकी के पास जाने-आने लगा । अस्तु ।

हम लोग अगर गम्भीरतापूर्वक विचार करे तो विदित होगा कि बचपन मे हम सब इस प्रकार की बातों को जानने के लिए उत्सुक थे । उत्सुकता का समाधान उपयुक्त स्थानों पर हो नही सका । अतः हमने एक ही जगह चार बाते सीखी थी, और वे भी गलत तरीके से । विवाह आदि के अवसरो पर गाई जाने वाली गालियाँ भी इसी प्रकार हमारा अहित करती रहती है । बालक उनके मतलब समझने को उत्सुक होते है, माँ-बहिने हँस कर उन्हें टाल देती है । निदान बालक अन्य व्यक्तियो से पूछते फिरते है और कालान्तर में बुरी सगत मे फँस जाते है ।

काम-भावना भी हमारी एक अत्यधिक महत्वपूर्ण मूलवृत्ति है । प्रत्येक बालक की जन्म से ही उसमे रुचि होती है और वह उससे सम्बन्धित समस्त जानकारी प्राप्त करने के लिए उत्सुक रहता है । वह इसके सम्बन्ध में माता से प्रश्न करता है, वह झेंप कर चुप हो

जाती है अथवा इधर-उधर की बाते बनाकर टाल देती है। बालक ताड लेता है कि इसमे कुछ न कुछ विचित्र बात अवश्य है। दो-चार बार ऐसा होने से वह इस सम्बन्ध में सतर्क हो जाता है, और काम-सम्बन्धी चर्चा के नाम पर झेपने लग जाता है, और अवसर पाकर किसी अवाछनीय व्यक्ति के फेर मे पड जाता है।

हमे समझ लेना चाहिए कि काम हमारा एक जन्मजात मनोवेग है, वह सृष्टि का मूलाधार है, उसका हमारे जीवन मे अत्यधिक महत्व है तथा उसकी चर्चा हमे करनी ही पडेगी। हमे चाहिए कि उसके विषय मे भी उतनी ही साधारण तौर पर चर्चा करने की आदत डाले, जितनी आसानी से हम रोटी, तरकारी, दाल आदि की चर्चा कर लेते है। तब हमारे बालक भी उसके विषय मे आवश्यकता से अधिक उत्सुक न होगे। हमारा बालक इस सम्बन्ध मे जो प्रश्न करे, हमें चाहिए कि सावधानी के साथ उनके सीधे-सीधे उत्तर दे दें। ऐसा करने से बालक की काम-भावना गलत रास्ते पर नही जायगी।

आधुनिक युग मे फ्राइड इत्यादि अनेक मनोविज्ञान-विशारदो ने इस दिशा मे अनेक महत्वपूर्ण खोजे की है। माता-पिता को चाहिए कि इन खोजो से लाभ उठाये। इनके मतानुसार काम-भावना का दमन नही करना चाहिए। दमन करने से व्यक्ति का विकास रुक जाता है। इसके अतिरिक्त इन वैज्ञानिको ने यह भी बताया है कि मैथुन हमारे जीवन की एक सामान्य प्रक्रिया है, इसके द्वारा स्वास्थ्य की विशेष हानि नही होती है। अत माता-पिता को चाहिए कि 'वीर्य-रक्षा', 'ब्रह्मचर्य' आदि की चर्चा मात्र करे, उनके ऊपर अत्यधिक बल न दे। अत्यधिक बल देने से बालक मे विरोध एव उत्सुकता की भावनाएँ जाग्रत हो उठती है। आप इन बातो के विरोध मे जितने ही व्याख्यान देगे, उनके विषय मे बालक की रुचि उतनी ही अधिक प्रबल होती जायगी। इसी प्रकार यदि आप कभी अपने बालक को मैथुन आदि करते देख लेते है, तो आपको चाहिए कि उसे डाटे-डपटे अथवा मारे-पीटे नही। उपयुक्त अवसर पर उससे पूछे कि तुम क्या कर रहे थे ? क्यो कर

रहे थे ? इत्यादि । और फिर मौका देखकर उसे बता दे कि इस काम के करने से अमुक-अमुक प्रकार की तकलीफें हो जाया करती है। आप देखेगे कि एक सच्चे मित्र की तरह बालक आपका विश्वास कर लेता है। विरोध के फलस्वरूप विरोध का जन्म होता है तथा प्रेम के फलस्वरूप विश्वास एवं श्रद्धा की उत्पत्ति होती है।

एक बात और याद रखे। बालक के सामने कभी भी काना-फूँसी अथवा घुस-फुस न करे। इसके दो दुष्परिणाम होते है—(१) बालक आपकी बात को जानने के लिए अत्यन्त उत्सुक हो उठता है तथा (२) वह समझ लेता है कि आप उसके प्रति अविश्वासी हैं, अतः वह आपको अपना मित्र समझना बन्द कर देता है।

अवस्था के साथ बालक की उत्सुकता के विषय बदलते रहते है। माता-पिता को चाहिए कि बालक के शारीरिक एवं मानसिक परिवर्तनों का ध्यान रखें और उनके अनुसार उसकी आवश्यकताओं की पूर्ति करते रहे। माता-पिता को चाहिए कि इस बात की पूरी कोशिश करें कि उनके बालक को प्रत्येक आवश्यक बात समय से मालूम हो जाय। किसी बात को अगर स्वयं न बता सकें, तो उससे सम्बन्धित उपयुक्त पुस्तक उसे पढने को दे दे। बालक को सदैव बालक ही न समझे। ऐसा समझने से उसके अह को आघात पहुँचता है। वह सोचता है कि माता-पिता मेरा अपमान करते है। मै बड़ा हो गया हूँ और ये इस बात को समझते ही नही है, मेरी आवश्यकताओ की ओर से उदासीन है, आदि। फलस्वरूप गलत और खतरनाक व्यक्तियो अथवा रास्तों द्वारा उसकी आवश्यकताओं की पूर्त्ति होने लगती है। कहा भी है कि 'सोलह वर्ष का बालक मित्र के समान होता है।' वास्तव में बारह और बीस वर्ष की अवस्था के बीच में बालक के शरीर में महत्वपूर्ण परिवर्तन होते है और उसके मन में भारी उथल-पुथल होती है। माता-पिता को चाहिए कि बढते हुए बालक को मित्र के समान सब बाते बताते—

समझाते रहे और उसे गलत अथवा गैर-मुनासिब आदमियो के पास जाने का मौका न दे । माता-पिता को चाहिए कि बालक की जिज्ञासा का समाधान करते रह कर उसके सबसे अधिक विश्वनीय मित्र बन जाये । बस, बालक अपनी प्रत्येक समस्या और कठिनाई को लेकर आपके ही पास आयगा, अन्यत्र जाने की उसे आवश्यकता ही नही पड़ेगी ।

सारांश

माता-पिता को चाहिए कि बालक के प्रत्येक प्रश्न का पूर्ण रुचि के साथ उत्तर दे, उसकी उत्सुकता-वृत्ति को सावधानी के साथ विकसित होने दे और उसके सच्चे मित्र बनने का प्रयास करे । सच्चा मित्र बनने के लिए निम्नलिखित बातों का ध्यान रखना अनिवार्य है--

(१) बालक से कभी कोई गलत बात न कहें । भेद खुलते ही, आपके प्रति उसका विश्वास न रह जायगा ।

(२) प्रत्येक प्रश्न का सावधानी के साथ सही उत्तर दे ।

(३) किसी काम को न करने के लिए कभी भी आदेश न दे । उस काम के करने से उत्पन्न होने वाले दोषों एव कष्टों को समझाते हुए एक सच्चे मित्र की भाँति उसे केवल परामर्श दें ।

(४) अपने व्यवहार के द्वारा आप बालक के हृदय-पटल पर ये भाव अंकित कर दीजिए कि आप उसकी प्रत्येक कठिनाई को समझते हैं, आप कभी भी उसका मजाक नही उडाते तथा आप उसकी सहायता करने के लिए सदैव तत्पर रहते हैं ।

(४) मारने-पीटने अथवा डाट-डपट करते रहने से बालक बिगड जाता है । आपके प्रति उसे विश्वास नही रह जाता है । आपसे बात छिपाने में वह अपना कल्याण देखता है । अन्य व्यक्तियों को वह अपना मित्र समझने लगता है । वे उसकी कठिनाइयो को सुलझाने का स्वाग करते है । बालक उनके इशारो पर नाचने लगता है । ऐसी स्थिति बालक के लिए तो सदैव हानिकर होती ही है, इसके कारण कभी-कभी समस्त परिवार ही सकट में पड़ जाता है ।

पाठ ११

प्रशंसा और प्रोत्साहन

माता-पिता सामान्यता अपने बालक के बारे मे दो प्रकार से चर्चा करते है—(१) वे सदा उसकी तारीफ के पुल बाँधते है अथवा (२) वे सदैव उसकी बुराई करते रहते है। प्रथम के विचार से ऐसा करने से बालक को प्रोत्साहन मिलता है और वह तरक्की करता जाता है, तथा द्वितीय के विचार से तारीफ करने से बालक कोशिश करना छोड देता है। हमारे विचार से ये दोनों ही स्थितियाँ बालक के लिए हानिकारक है। अपनी तारीफे सुन-कर बालक फूलकर कुप्पा हो जाता है और समझ लेता है कि मुझे अब और कुछ नही सीखना है तथा मै अपने साथियो की अपेक्षा एक अत्यधिक श्रेष्ठ व्यक्ति हूँ। ऐसे बालक समझ लेते है कि उनके 'सुर्खाब के पर' लगे है। यही मनोवृत्ति आगे चलकर उन व्यक्तियो का निर्माण करती है—जिन्हे समाज 'हम चुनी दीगरे नेस्त' की उपाधि से विभूषित करता है। द्वितीय श्रेणी के बालकों का मन एकदम गिर जाता है, उनमे हीनत्व की भावना घर कर जाती है और वे अपने आपको किसी काम का नही सम-झते, छोटे से छोटा काम करते हुए उन्हे झिझक होती है।

आपने बकरी और ठगों वाली कहानी तो पढी होगी। चार ठगों ने बकरी को कुत्ता बताया, बकरी वाला बकरी को कुत्ता समझ कर छोड़ गया। दस व्यक्ति किसी को पागल कह दे, तो वह व्यक्ति अच्छा-भला होते हुए भी पागल बन जायगा। वह गम्भीरता-पूर्वक सोचने लगेगा कि क्या मै सचमुच पागल हूँ? ये सबके सब तो पागल हो ही नही सकते, अत· मुझ मे अवश्य ही पागलपन के कुछ लक्षण होगे। इसी प्रकार जब बालक अपने लिए बेवकूफ, नालायक आदि शब्दो को प्रयुक्त होते हुए बार-बार सुनेगा, तो उसे

विश्वास हो जायगा कि वह बेवकूफ अथवा नालायक है। माता-पिता को चाहिए कि अपने बालक के विषय मे चर्चा करते समय बहुत ही सन्तुलित रहे, उसकी भलाई-बुराई करते समय पूरी सावधानी से काम ले।

हमारे एक मित्र का लडका हाई स्कूल प्रथम श्रेणी मे पास हुआ। हमारे मित्र ने उसकी तारीफो के पुल बाँध दिये--रात दिन पढता है, बडा तेज है, एक बार पढी हुई बात इसे हिफ्ज हो जाती है, आदि। परिणाम यह हुआ कि कुँवर साहब इण्टरमीजिएट मे कुलॉट लगा गये। कभी-कभी ऐसा भी होता है कि पिताजी की खुशामद करने के लिए मुसाहिब लोग लडके की तारीफ करने लगते है। प्रत्येक माता-पिता को अपने बालक की तारीफ अच्छी लगती है। ये लोग इस कमजोरी से फायदा उठाते है, परन्तु बालक बिगड़ने लगता है। अत जब अन्य लोग बालक की तारीफ करने लगे तो माता-पिता को सावधान होकर गम्भीरतापूर्वक विचार करना चाहिए कि ये लोग आखिर हमारे बालक की क्यों तारीफ कर रहे है? वह क्या सचमुच इतना अच्छा किवा होशियार है? इसी प्रकार माता-पिता को अपने बालक की बुराई मे भी विशेष रुचि न दिखानी चाहिए। जब बालक को पता चलता है कि उसके पिता अथवा माता को उसकी अप्रशसा प्रिय है, तब उसके मन को धक्का लगता है, उनके प्रति उसका विश्वास कम हो जाता है और वह समझ लेता है कि माता-पिता उसके शुभेच्छु नही है।

हमारे एक चाचा थे। उनका लडका पढने मे बहुत तेज था। उसे नजर न लग जाय, इस भय से वह उसकी बुराई किया करते थे। जहाँ कही भी किसी लड़के की पढने-लिखने की चर्चा होती, वे तुरन्त इस प्रकार की बाते कहने लग जाते--हाँ साहब! अमुक लडका बड़ा तेज है। हमारे भाई के लडके यानी हमारे भतीजे भी बहुत तेज है। क्या बताऊँ हमारा लड़का (जिसके लिए वह 'भइया' शब्द प्रयुक्त करते थे) तो बडा ही नालायक है, जब देखो तब खेलता रहता है, न मालूम क्या तिकडम करता है, जो हर

साल पास तो जरूर हो जाता है, इत्यादि । अपने पिताजी की बाते सुनते-सुनते उसके कान पक गये । एक दिन उसने हमारी चाची से कहा, "लो मै, आज से स्कूल नही जाऊँगा । मै इतना पढ़ता हूँ, दिन-रात मेहनत करता हूँ, परन्तु पिताजी की आँख से नही आता, मै इससे ज्यादा कुछ नही कर सकता । अत. स्कूल जाने का कोई लाभ नही है ।" आप विश्वास कीजिए कि परिवार के प्राय: प्रत्येक सदस्य ने उसे बहुत कुछ समझाया-बुझाया परन्तु उसने पढना बन्द कर ही दिया ।

कभी-कभी तो माता-पिता अपने-अपने बालकों की तुलना करने बैठ जाते है, अथवा अपने बालक के सामने अन्य किसी बालक की प्रशसा करने लगते है । ऐसा करने से बालक के अहं को आघात पहुँचता है । वह समझ लेता है कि माताजी अथवा पिताजी को मै अच्छा नही लगता हूँ, वे तो केवल अपने कर्तव्य का पालन-भर कर रहे है । वे मुझे घर मे रखकर खाना-कपड़ा केवल इसलिए देते है, क्योंकि मै उनका लडका हूँ, अन्यथा उन्हे मेरे प्रति कोई आकर्षण नही है । वह माता-पिता को तथा उस बालक को, जिसके साथ उसकी तुलना की जाती है, अपना शत्रु समझने लगता है । ऐसे बालक प्राय: विद्रोही हो जाते है तथा हमेशा तारीफ के भूखे बने रहते है । वे सदैव इस बात की कोशिश करते है कि अन्य व्यक्ति उनकी प्रशसा करे, फलत. वे व्यर्थ की बाते तथा व्यर्थ के काम करने के आदी हो जाते है । लोग उनकी ओर ध्यान नही देते और तब वे फिर सबको बुरा समझने लगते हैं ।

यहाँ लडकियों के सम्बन्ध मे एक विशेष बात बतानी है । लडकियों के साथ उनके सौन्दर्य की चर्चा का विशेष महत्व है । अत्यधिक प्रशसा सुनकर वे उडने लगती है और उनकी आँख के पलक ऊपर को नहीं उठते तथा अपने सौन्दर्य की निन्दा सुनती रहने मे उनके मन में अपने प्रति घृणा एव विरक्ति हो जाती है । वे समझने लगती है कि समाज में उनका कोई उपयोग नहीं है,

वे अपनी सहेलियों के साथ क्या मुँह लेकर बैठने-उठने जाये ? वे अपने पति को तो कभी प्रसन्न अथवा सन्तुष्ट न कर सकेगी। माता-पिता को चाहिए कि अपने बालकों के सम्मुख—विशेषकर लडकियो के सामने सौन्दर्य का कम से कम गुणगान करे, उसके महत्व की कम से कम चर्चा करे, सदैव इसी बात पर जोर दें कि जो अच्छे काम करे वही सुन्दर है, सद्गुणो का ही नाम वास्तविक सौन्दर्य है।

तब फिर क्या माता-पिता अपने बालक के बारे में कभी किसी प्रकार की चर्चा ही न किया करे ? अवश्य करें—परन्तु अवसर के अनुकूल, क्योंकि यह तो हम देख ही चुके है कि अत्यधिक प्रशसा और निन्दा बालक को बिगाडने में समान रूप से सहायक होती हैं। ठीक बात के लिए, ठीक समय पर, ठीक तरह से तारीफ करना बालक के लिए सदैव हितकर सिद्ध होता है।

हम किसी बालक के शरीर की बनावट की तारीफ करते है—इसकी नाक अथवा आँख बहुत सुन्दर है अथवा इसके कोट का कपडा बहुत अच्छा है। हमारी यह प्रशसा अनुपयुक्त है, क्योकि इन वस्तुओ को प्राप्त करने के लिए बालक को किसी प्रकार की कोशिश नही करनी पडी थी। परन्तु यदि कोई बालक अपने हाथ से अच्छा खिलौना बनाकर हमें दिखाता है, कोई लडकी अपने हाथ की सिली हुई अथवा कढी हुई कुर्ती हमको दिखाती है, कोई बालक हमें अपना सुलेख दिखाता है, तो ऐसी दशा मे हमारा यह कर्तव्य है कि हम उसकी प्रशंसा करे। परन्तु यह ध्यान रखे कि प्रशसा द्वारा उसको प्रोत्साहन भर दे। हमारी प्रशसा अगर आवश्यकता से अधिक हो गई, तो वह झूंठ की श्रेणी मे आ जायगी और उसके द्वारा वे समस्त दुष्परिणाम हो सकते है, जिनकी हम 'झूठ बोलना' के अन्तर्गत चर्चा कर चुके है।

प्रत्येक व्यक्ति प्रशसा का भूखा होता है, प्रशसा पाकर व्यक्ति को और अधिक अच्छा काम करने की इच्छा होती है। प्रशंसा द्वारा बालक को प्रोत्साहन देना अच्छी शिक्षा का एक महत्वपूर्ण

अग है, ग्रौर प्रत्येक माता-पिता को चाहिए कि अपने बालक के प्रयासों की सराहना करते रहे, ताकि उसका उत्साह भंग न हो और वह उन्नति के पथ पर बढने के लिए सदैव प्रयत्नशील बना रहे। जो माता-पिता अपने बालक के प्रयास की निन्दा अथवा उपेक्षा करते है, उस बालक का मन बैठ जाता है और वह निरुत्साही हो जाता है। ऐसे बालक जन्म भर सुस्त ग्रौर आलसी वने रहते है।

आप बालक की प्रशसा ठीक तौर पर कर रहे हैं अथवा बढा-चढाकर, बालक इस भेद को बहुत अच्छी तरह समझता है। वह यह भलीभाँति समझता है कि उसने किसी काम को ठीक तरह से किया है अथवा उसने उसे बिगाड़ दिया है। मान लीजिए आपकी छोटी-सी लड़की रोटी अथवा पूरी बेलती है। आप कह देते है—वाह, बहुत बढिया! ऐसी तो आज तक किसी ने नही वेली! आदि। आपकी वच्ची समझ लेती है कि आप बढा चढाकर कह रहे है। उसकी नजरों मे आपकी प्रशसा का कोई मूल्य नही रह जाता। सही ढंग पर प्रशसा करने का तरीका यह होगा—"बहुत अच्छी बेली है। देखो तो सही, इतनी छोटी-सी लडकी ने इतनी अच्छी पूरी बेली है। बडी होकर यह तो बहुत बढ़िया पूरी बेलने लगेगी।" इन वाक्यों द्वारा उसको प्रोत्साहन मिलगा। वह ज्यो-ज्यों बरी होती जायगी, त्यो-त्यो अच्छी पूरी बेलती जायगी। इसी प्रकार, मान लीजिए आपका तीन वर्षीय बालक गेद-बल्ला खेल रहा है। आपको चाहिए कि न तो इस प्रकार की बाते कहे 'अभी से गेद-बल्ला खिलाने से कोई लाभ नही है, इससे तो बल्ला पकडना भी नही आता है।' और न इस तरह की ही बातें करे कि 'वाह! वैसा हिट मारता है, मालूम पड़ता है कोई बड़ा खिलाडी खेल रहा है।' आपको चाहिए कि इस प्रकार के शब्दो द्वारा उसका उत्साह-वर्द्धन करे—'अभी छोटा है तो क्या, बल्ला तो पकड़ लेता है। जितनी उम्र है, उतनी जोर से तो मार ही लेता है। इसी तरह ख़ेलता रहा, तो धीरे-धीरे अच्छा खेलने लगेगा। सब अच्छे खिलाड़ी इस उम्र मे ऐसा ही खेलते थे।' आदि।

कहने का तात्पर्य यह है कि बालक को ठीक तरह से शिक्षा देने का अर्थ है कि (१) माता-पिता बालक की निन्दा कभी भी न करें तथा (२) उसको प्रोत्साहन मात्र दे, उसकी प्रशसा मे लिप्त न हों। 'निज कवित्त केहि लाग न नीका' के अनुसार प्रत्येक माता-पिता को अपना बालक अच्छा लगता है, अत इस ओर विशेष सावधान एव सन्तुलित रहने की आवश्यकता है।

सारांश

बालक की निन्दा कभी मत कीजिए। अन्य व्यक्तियो के सामने भूलकर भी उसकी बुराई न कीजिए।

उसके प्रत्येक प्रयास की प्रशसा कीजिए, ताकि उसका उत्साह बढे। उसकी हर तरह से तारीफ कभी न कीजिए, जिससे वह फूल जाय अथवा अपने आपको एक असामान्य बालक समझने लग जाय।

प्रोत्साहन प्रदान करना शिक्षा देने का एक उपयुक्त साधन है। कोरी तारीफ करने का बुरा असर दो प्रकार से होता है—(१) बालक प्रयास करना बन्द कर देता है तथा (२) कालान्तर मे वह हमे झूठा समझने लगता है।

प्रशसा का वास्तविकता के साथ गहरा सम्बन्ध होना चाहिए।

पाठ १२

ताड़ना देना

बहुत पुरानी कहावत है कि विना मारे-पीटे बच्चा विगड जाता है। परन्तु आधुनिक मनोविज्ञान-विशारदो का मत इससे सर्वथा भिन्न है और वह सर्वथा उचित ही है।

पुराने ढग के स्कूलो मे बालको की खूब पिटाई होती थी, कही-कही अब भी होती है। बालक वहाँ जाते हुऐ डरता है। बालक स्कूल को जेलखाना अथवा कसाईखाना समझता है। आपने अक्सर देखा होगा कि वालक के अभिभावक वालक को पकड कर जबरदस्ती स्कूल तक ले जाते है, कभी उसे रास्ते पर ठोकते-पीटते हुए ले जाते है, कभी उसकी डण्डा-डोली करके ले जाते है। अस्तु।

पीट-पीट कर पढाने अथवा मार-मार कर हकीम बनाने वाले सिद्धान्त का इतना प्रचार हुआ कि अध्यापको ने वालको को ताडना देने के नये-नये तरीके निकाल लिये। घूमा मारना, लात मारना, थप्पड मारना, बेत मारना, मुर्गा वनाना, कुर्सी वनाना आदि तो साधारण-सी बाते है, हमने देखा कि अध्यापक ने बालक को मुर्गा बना कर उसकी पीठ पर कोई सामान रख दिया, जैसे ही वह जरा भी हिला कि मास्टर साहब ने पीठ पर डण्डे बरसाना शुरू कर दिये। हमने बालक को ताडना देने के लिए और भी अनेक रोमाचकारी दृश्य देखे है, जैसे अँगुलियो के बीच मे लकडियों को फँसाकर उन्हे भीच देना, मेज के नीचे बालक का हाथ रख कर उसके ऊपर स्वयं बैठ जाना, उसकी खाल को नोचना, इत्यादि।

इन दृश्यों को देख कर ऐसा लगता है, मानो अध्यापक बालक के साथ कोई पुरानी दुश्मनी निकाल रहा है। इन अध्यापकों को

बालक अगर अपना शत्रु समझ ले और स्कूल को कसाईघर समझ ले तो इसमें आश्चर्य की क्या बात है ? हमने बहुत से माता-पिता देखे है, जो बात-बात मे बालक को पिटाई करने मे विश्वास करते है। एक कहानी प्रचलित है कि एक पिता जी अध्यापक के पास जा कर बालक की ओर सकेत करके बोले कि मास्टर साहब ! मेरे बच्चे को पढा दीजिए। इसकी हड्डियाँ मेरी है और इसका मॉस आपका है। अध्यापक ने पहिले ही दिन उसके कान को इतनी जोर से मसला कि वह टूट गया। टूटे हुए कान को अध्यापक ने बालक के हाथ मे दे दिया । बालक उसे लेकर रोता हुआ घर आ गया ।

ताडना देने की बालकों के ऊपर दो प्रकार की प्रतिक्रियाएँ होती है—(१) वे अध्यापकों और माता-पिता से डरने लगते है तथा (२) वे उनके विरोधी बन जाते है। दोनों ही स्थितियों का बालकों के ऊपर बुरा प्रभाव पडता है और बालक अपने अध्यापकों तथा अपने अभिभावकों के विरोधी बन जाते है। अध्यापक के डर का परिणाम यह होता है कि बालक स्कूल नही जाना चाहता, स्कूल न जाने के लिए तरह-तरह के बहाने बनाता है, घर से स्कूल का नाम ले कर जाता है, परन्तु रास्ते मे खेलता रहता है अथवा इधर-उधर चला जाता है। हमने ऐसे बहुत से लड़के देखे है जिन्हे स्कूल के नाम से ही बुखार आ जाता है। ऐसे भी लड़कों की कमी नही है जो स्कूल खुलने के समय पर घर से चले जाते है और बन्द होने के समय के हिसाब से घर लौट कर आ जाते है। पूछने पर पता चलता है कि वे महीनों के स्कूल नही पहुँचे है। माता-पिता के डर से बच्चे घर से निकल भागते है, साधु-सन्यासियो के साथ हो लेते है तथा कभी-कभी आत्म-हत्या तक कर डालते है। घर से गायब रह कर बेकार वक्त गुजारने वाले बालक अगर बुरी सगत मे पड़ कर चोरी, जुआ आदि करना सीख जाये, तो यह सर्वथा स्वाभाविक ही है।

अध्यापक के विरोधी बालक सदैव अध्यापक से बदला लेने की सोचते रहते है। वे उन्हें मन ही मन कोसते तो है ही, कभी-

कभी मौका पा कर उनके ई ट इत्यादि भी मार देते है । हमें अच्छी तरह याद है कि हमारे प्राइमरी स्कूल के पडित जी चपते बहुत मारते थे । हमारा एक सहपाठी एक दिन अपनी टोपी के अन्दर बबूल के काँटे रख लाया । जैसे ही पडित जी ने चपत मारी, वैसे ही उनके हाथ मे काँटे चुभ गये । एक दिन कुछ लडको ने शरारत करके उनकी कुर्सी में कुछ आलपीनें खुरस दी थी । हमे उर्दू पढाने वाले मौलवी साहब के पास एक लम्बी रूल थी, वे उसी से पीटा करते थे । एक दिन उन्होने एक लडके से कहा कि वह उनके पीने के लिए अपने घर से ठण्डा पानी ले आय । लडका पानी तो लाया ही, साथ ही उस लोटे मे पेशाब भी करता लाया । हमारे एक साइन्स मास्टर बात-बात मे विद्यार्थियों को पीटा करते थे । लड़कों ने होली मिलने के बहाने, पहले तो उनका नया सूट नीली रोशनाई से बिगाड दिया और फिर हल्ले-गुल्ले मे किसी ने उनका गाल काट खाया । अस्तु ।

जो माता-पिता अपने बालको को बहुत मारते-पीटते है, उनके बालक बेशर्म और बदतमीज हो जाते है । न उन्हे किसी बात का डर रहता है और न किसी व्यक्ति का लिहाज । पीटे जाने को वे धूल झड़ जाना समझने लग जाते है और कहने-सुनने को वे कुत्ते का भौकना समझते है । ये बालक बड़े होने पर अपने माता-पिता को मारने को तैयार रहते है और मौका मिलते ही उनसे अलग हो जाते है । माता-पिता बालक को छोटा भले ही समझते रहे, परन्तु बालक तो अपने आपको छोटा नही समझता है । वह अपना एक स्वतन्त्र व्यक्तित्व समझता है और उसी के अनुसार व्यवहार की आशा करता है ।

कुछ महानुभाव कह सकते है कि हरि-भजन और विद्याध्ययन ससार के सबसे कठिन काम है । मन लगा कर पढना लोहे के चने चबाना है । इसी कारण बालक पढने में जी चुराते है । अगर मार-पीट न की जाय, उन्हे ताडना दी जाय, उन्हे भय न दिखाया जाय, तो वे इतना भी न पढे, स्कूल की तरफ पैर कर के सोये भी नही । हमारा निवेदन है कि आप घोडे को नदी के किनारे तो ले

जा सकते है, परन्तु बिना मर्जी उसे पानी पीने को मजबूर नही कर सकते । इसी प्रकार मार-मार कर हकीम नही बनाये जाते । इसके अतिरिक्त, उन लोगो से हमारा निवेदन है कि वे कभी विलायती ढग के पब्लिक स्कूलो और उनमें पढने वाले बालकों को देखने का कष्ट करे । वे बालक स्कूल जाने के सदैव लालायित रहते है । माता-पिता अगर कभी रोकना चाहे, तो भी वे मचल जाते है, कभी स्कूल की छुट्टी हो तो वे दु खी होते है । इसका एक कारण है—उनके अध्यापक उनके प्रति प्रेमपूर्ण व्यवहार करते है और स्कूल बालकों के लिए आकर्षण की वस्तु बन जाता है । माता-पिता को भूल जाना चाहिए कि उनके प्रति कैसा व्यवहार हुआ था, उन्हे सोचना चाहिए कि वास्तव मे कैसा व्यवहार किया जाना चाहिए ? जब उनकी पिटाई होती थी, तब उन्हे कैसा लगता था ? मारने वाले के प्रति उनके मन में किस प्रकार के भाव उत्पन्न हुआ करते थे ?

केवल पढने-लिखने और स्कूल जाने के सम्बन्ध मे ही नही, बल्कि जीवन के प्रत्येक क्षेत्र के सम्बन्ध में, हमारा निश्चित मत है कि बालक को कभी भी ताडना नही देनी चाहिए । ऐसा करने से उसके ऊपर मनोवैज्ञानिक एव व्यावहारिक दोनो ही दृष्टियो में बुरा प्रभाव पड़ता है । भय के कारण उसके स्नायुयो और उसकी मॉस-पेशियो मे सकुचन होता है और उसका विकास अवरुद्ध होता है, विरोध के कारण वह अपने अभिभावकों का शत्रु बन जाता है । हमारी यह सुनिश्चित धारणा है कि जिन बालको को उपयुक्त ढग से शिक्षा दी जाती है, उन्हें ताडना करने की कभी आवश्यकता ही उत्पन्न नही होती । जिस बालक को मारने-पीटने की आवश्यकता पड जाय, हमारे मतानुसार उस बालक को उसके माता-पिता ने ठीक तरह से नही पाला-पोसा है ।

प्रश्न हो सकता है कि हमारे बालक में अगर कुछ अवगुण आ गये है, तो हम क्या उसकी पूजा करे ? मार के डर से भूत भागता है, मार-पीट कर ही उसकी बुरी आदते दूर की जा सकती है । ऐसे व्यक्तियों से हमारा निवेदन है कि वे दो प्रश्नों पर विचार

करें--(१) मार-पीट के द्वारा क्या किसी व्यक्ति को बदला जा सकता है ? तथा (२) मार-पीट की प्रतिक्रिया स्वरूप किस प्रकार के भाव उत्पन्न होते हैं ? आप सहमत होंगे कि मार-पीट के फल-स्वरूप विरोध की भावना तीव्रतर होती है। आपने प्राय: देखा होगा कि पिटने वाला व्यक्ति इसी प्रकार की बाते कहता है कि अच्छा अब तुम मुझे मार ही लो अथवा चाहे मार ही डालो, मै अमुक काम कदापि नही करूँगा अथवा अमुक बात हरगिज नही बताऊँगा, आदि। और फिर जब हमसे कोई अप्रिय बात कहता है अथवा जब हमे कोई मारने लगता है तो हमारे मन में कैसे भाव उत्पन्न होते है ? हम केवल उस व्यक्ति से बदला लेने की सोचते है अथवा चाहते है कि उस व्यक्ति का सर्वनाश हो जाय। आप सहमत होंगे कि इस प्रकार के दुर्व्यवहार द्वारा प्रेम, सहानुभूति, सच्चाई जैसे उदात्त भाव कदापि उत्पन्न नही किये जा सकते। मार-पीट करके आप बालक के नटखटपन अथवा शैतानी को दूर नही कर सकते, आप उसके मन मे विवशता, लाचारी विरोध आदि के भाव भले ही भर दे।

हमारा कर्तव्य है कि हम बालक के अवगुण के कारण पर विचार करे। अगर हमारा बालक पिटने का कोई काम करता है, तो हमे तुरन्त विचार करना चाहिए कि इसमे यह दुर्गुण कहाँ से, किस प्रकार आ सकता है ? आखिरकार इसने यह काम किया ही क्यो ? आपकी समझ मे यह तुरन्त आ जायगा कि उसको पीटना व्यर्थ है।

मान लीजिए कि हमारे हाथ मे चाकू लग जाता है और उसका सिरा टूट जाता है। डाक्टर उस टूटे हुए टुकडे को निकाले बिना ही हमारे हाथ के घाव की मरहमपट्टी कर देता है। हो सकता है कि घाव भर कर ठीक हो जाय, परन्तु लोहे का टूटा हुआ वह टुकडा हमें चाहे जब तग कर सकता है। हो सकता है वर्षो बाद वह अपना असर दिखाये। ठीक यही बात हमें दिमाग और उसमे बस जाने वाले अवगुण के सम्बन्ध मे समझ लेनी चाहिए। प्रत्येक अवगुण का विशेष कारण होता है और वह अवगुण मन के भीतर

गहरा बैठा होता है । जब तक उस अवगुण का कारण विदित न होगा, तब तक उसका समुचित प्रतिकार (ठीक-ठीक इलाज) भी न हो सकेगा । मार-पीट अथवा डाट-डपट के द्वारा ऊपरी मरहम-पट्टी भले ही हो जाय और थोडे समय के लिए वह अवगुण दब जाय ।

मान लीजिए आपका बडा लडका अपनी छोटी बहिन को हमेशा मारता रहता है । आपको चाहिए कि आप उसके इस कृत्य का मनोवैज्ञानिक कारण खोजें । आपको विदित होगा कि किसी न किसी कारणवश वह अपनी छोटी बहिन से ईर्ष्या करता है । सम्भव है कि आप या बालक की माताजी लड़के की अपेक्षा उस छोटी लडकी की ओर अधिक ध्यान देती हैं । आपको चाहिए कि आप लडके के मन में सुरक्षा की भावना जाग्रत करे, उसे बतायें कि वह अपनी बहिन की अपेक्षा कही अधिक शक्तिशाली, चतुर तथा आत्मनिर्भर है । ऐसा करने से उसके मन मे सुरक्षा की भावना आ जायगी और वह बहिन को मारना बन्द कर देगा । समझाने-बुझाने की जगह अगर आप उसे पीटना शुरू कर देते है तो विश्वास कीजिए कि आपका लड़का अपने आपको और भी अधिक अरक्षित समझने लगेगा और वह अपनी बहिन के प्रति और भी अधिक कठोर बन जायगा, क्योंकि वह अपनी बहिन को अपनी सुरक्षा में बाधक समझता है ।

कभी-कभी ऐसा भी हो सकता है कि बालक के किसी अवगुण का कारण समझ मे न आय । ऐसी स्थिति मे माता-पिता को शान्त और चुप हो जाना चाहिए, बालक को अपने नटखटपन का परिणाम भुगतने देना चाहिए । एक बालक की यह आदत हो गई थी कि वह जिस चीज को देखता, उसी को उठाकर फेक देता । एक दिन उसके पिताजी उसके लिए गेद खरीदने बाजार जा रहे थे, इतने मे ही उसने चाय की तश्तरी तोड दी । पिताजी ने बहुत ही सावधानी से उससे कहा, "देखो यह तश्तरी टूट गई है । शाम को चाय पीते समय इसकी जरूरत पडेगी । अतः मै अब तश्तरी लाऊँगा, क्योकि दोनो चीजों के लिए मेरे पास पैसे नही है ।"

बालक चुप हो गया। उस घटना के बाद उसने चीजो को फेंकना बन्द कर दिया।

अब आप ही विचारिए कि इस प्रकार मित्र की तरह समझाने के स्थान पर अगर पिताजी ने उसे पीट दिया होता, डाट दिया होता अथवा इस प्रकार की बात कही होती कि तुम बहुत शैतान हो गये हो, तुमने तश्तरी तोड़ दी है, तुमको इसकी सजा मिलनी चाहिए, अब मै तुम्हारे लिए गेद नही लाऊँगा, तो बालक के ऊपर क्या प्रतिक्रिया होती ? वह अपने आपको आपकी शक्ति के द्वारा आक्रान्त समझता और आपका विरोध करना चाहता, क्योकि शत्रु का विरोध करना अथवा अपने महत्व की प्रतिष्ठा करना मानव का स्वभाव होता है। बालक जिद पकड़ जाता कि वह गेद मँगाकर ही रहेगा, अथवा वह अपने मन में यह सकल्प कर लेता, अच्छी बात है मत लाओ गेद, मै दूसरी तश्तरी भी तोड़ दूँगा।

आपको चाहिए कि आप बालक मे अपने प्रति विश्वास उत्पन्न कर दे। बालक समझ ले कि आप एक सच्चे मित्र की भाँति प्रत्येक अवस्था मे उसकी सहायता करना चाहते है, उससे अगर कोई गलती हो जाती है तब भी उसको बुरा-भला नही कहते, बल्कि उस स्थिति मे भी आप उसकी सहायता करना चाहते है। बालक की दिक्कते कम हो जायेगी और वह शैतानियाँ करना भी कम कर देगा।

"प्रकृति मे प्रत्येक कार्य की प्रतिक्रिया होती है। प्रतिक्रिया कार्य की सदैव विरोधी होती है और कार्य की गहनता के अनुरूप होती है।" प्रत्येक माता-पिता को चाहिए कि विचारक न्यूटन के इस नियम को हृदयगम कर ले, क्योकि मानव-प्रकृति भी इस नियम का अपवाद नही है।

सारांश

अपने बालक को कभी ताडना न दीजिए। ताडना को डाक्टर की जहरीली दवा के समान समझिए। वह थोड़ी देर के लिए भले ही लाभकारी जान

पडे, परन्तु कालान्तर में उसका प्रभाव बहुत बुरा होता है। अगर बालक के किसी अवगुण का कारण आपकी समझ मे नही आता है, तो आप चुप हो जाये और उसे अपनी शतानी का नतीजा भुगतने दे, और अवसर पाकर एक सच्चे मित्र की भाँति उसे समझा-बुझा दे। मारने-पीटने वाले तथा डाट-डपट करने वाले को हम, और इसीलिए बालक भी अपना दुश्मन समझता है।

———

पाठ १३

निन्दा करना

बालक जो देखता है अथवा सुनता है, वही करता है। माता और पिता आपस मे लडते है, बालक समझ लेता है कि जीवन का यही नियम है। वह भी अपने सम्पर्क मे आने वाले व्यक्तियो से लडने लगता है। माता की अपनी जेठानी, देवरानी, सास, ननद आदि से कहा-सुनी होती रहती है। बालक के हृदय मे भी अपनी ताई, चाची, दादी, बुआ आदि के प्रति सम्मान अथवा आदर के भाव नही रह जाते। पिताजी के विषय मे भी इसी प्रकार समझ लेना चाहिए। फिर शिकायत की जाती है कि बच्चे बहुत बद्तमीज हो गये हैं, वे किसी की इज्जत ही नही करते।

देखने की ही भाँति सुनने का असर होता है। माता-पिता अन्य लोगो की, विशेषकर अपने नातेदारो, रिश्तेदारों आदि की निन्दा करते रहते है, बालक उसे सुनता रहता है। वह समझ लेता है कि ये सबके सब बुरे है। उसके मन मे उनके प्रति घृणा एव द्वेष के अकुर जम जाते है। बडे होने पर वे पल्लवित हो जाते है। लोग समझते है कि लड़का अथवा लडकी झगडालू है।

परछिद्रान्वेषण करना (देशी भाषा में चवाव-चिट्ठा) करना हमारा स्वभाव-सा है। चार व्यक्ति जैसे ही इकट्ठे होते है, वैसे ही वे अपनी तो डीग हाँकने लगते है, और शेष व्यक्तियो की बुराई करने लगते है। बालक जब इन बातों को सुनता है अथवा इन दृश्यो को देखता है, तो समझ लेता है कि जीवन मे सफल होने की यही कुंजी है कि अपनी शेखी मारो तथा और लोगो की निन्दा करो। परिणाम यह होता है कि बालक को अपने सिवाय ससार के समस्त व्यक्ति दोषयुक्त अथवा अवगुणों की खान दिखाई देने लगते है। किसी के प्रति उसके हृदय मे न सम्मान रह जाता है और न आस्था, न श्रद्धा रह जाती है। वह एक प्रकार से

निराश-सा हो जाता है, क्योंकि अपनी श्रद्धा के लिए उसे आलम्बन ही नही मिल पाता। साराश यह है कि वह जिस वातावरण मे रहता है उसे कलुषित एव विषाक्त बना लेता है, जीवन के प्रति उसका दृष्टिकोण अत्यन्त अनुदार एव दूषित हो जाता है।

दूसरो में दोष देखने वाले व्यक्तियों की मनोवृत्ति किस प्रकार काम करती है, इसे मै एक उदाहरण देकर समझाता हूँ। मान लीजिए, मेरा नाम रामलाल अग्रवाल है और मै बेलनगज आगरा का रहने वाला हूँ। मेरी विचारधारा का क्रम इस प्रकार चलता है—ससार मे सबसे सुन्दर देश भारतवर्ष है, भारतवर्ष का सबसे श्रेष्ठ प्रान्त उत्तरप्रदेश है, उत्तर प्रदेश में सबसे अच्छा जिला आगरा है और आगरा जिले मे सबसे अच्छा नगर आगरा है और आगरा के सर्वश्रेष्ठ व्यक्ति बेलनगज मे रहते है, बेलनगज मे रहने वालों मे सबसे अधिक शरीफ है बनिए और उनमे भी अग्रवाल। अग्रवालों में सबसे ऊँचा हमारा परिवार है, और हमारे परिवार के प्राय प्रत्येक व्यक्ति मे कुछ न कुछ दोष है। केवल मै ही एक ऐसा व्यक्ति हूँ जो हमेशा ठीक तरह से सोच-विचार कर काम करता हूँ। अस्तु।

कभी-कभी धोखे से भी अन्य व्यक्तियो की निन्दा हो जाया करती है। माता-पिता लाड-प्यार मे कभी अपने किसी लडके, लडकी के लिए कह देते है—यह तो बिल्कुल पागल है, इसमे बिल्कुल अक्ल नही है, आदि। बालक अपने उस बडे भाई-बहिन के विषय मे वैसा ही समझ लेता है और बालक के हृदय मे उसके प्रति इज्जत कम हो जाती है। जब बालक के बाबा, दादी अथवा नाना, नानी जीवित हो, उस दशा मे ऐसी बाते बहुत हुआ करती है। बाबा, दादी, नाना, नानी आदि बुजुर्ग बालक को बहुत प्यार करते है। उसकी तरफदारी करते हुए वे प्राय. बालक के माता-पिता को डाट-डपट देते अथवा बुरा-भला कह देते है। बालक समझ लेता है कि उसके माता-पिता का परिवार में कोई महत्व नही है, और उसकी यह धारणा आजन्म बनी रहती है। अत.

माता-पिता को चाहिए कि बालक की नजरों मे कभी भी किसी व्यक्ति के महत्व को कम करने की चेष्टा न करे ।

ऊपर के विवेचन पर गम्भीरतापूर्वक विचार करने के फलस्वरूप हम इन निष्कर्षो पर पहुँचते है कि दूसरो की निन्दा सुनते रहने से--(१) बालक सबको बुरा समझने लगता है, उसकी दुनिया बहुत बुरी हो जाती है और जीवन उसके लिए भार-स्वरूप हो जाता है, (२) वह झगडालू स्वभाव का व्यक्ति बन जाता है, (३) उसे ससार मे बुराई ही बुराई दिखाई देती है, (४) वह किसी का सम्मान नही करता अथवा बदतमीज हो जाता है, (५) समाज उसकी ओर से उदासीन रहता है और वह हीनत्व-भावना से भर जाता है । दूसरों की निन्दा करना अपनी हीनत्व-भावना के प्रदर्शन के अतिरिक्त और कुछ नही है । अच्छा वह है जिसे और लोग अच्छा कहे, तथा वही व्यक्ति अच्छा बन सकता है जिसे और लोग अच्छे लगे । सबके प्रति घृणा, ईर्ष्या, द्वेष आदि बुरे भाव रखने वाले व्यक्ति को समाज क्यों कर अपना प्यार दे सकेगा ?

सारांश

बालक के सम्मुख कभी किसी की निन्दा न कीजिए । पर-निन्दा के द्वारा हृदय मे कलुष भर जाता है । जीवन को आकर्षक और सुखकर बनाने के लिए यह आवश्यक है कि हमारे हृदय में प्रेम का सागर हिलोरे लेता रहे ।

बालक जिनकी निन्दा सुनता है, वे व्यक्ति उसकी नजरो मे गिर जाते है । माता-पिता अन्य व्यक्तियो की जितनी ही अधिक निन्दा करते है, उनके बालक उतने ही अधिक अशिष्ट एव बदतमीज हो जाते है ।

पाठ १४

आत्म-प्रतिष्ठा और विरोध-भावना

हमारे जीवन के समस्त व्यापार किसी उद्देश्य से होते है। कभी हम किसी वस्तु पर अधिकार प्राप्त करना चाहते है, कभी हम किसी वस्तु से या व्यक्ति से प्रेम करते है, कभी हम अपने भविष्य की सुरक्षा से कोई काम करते है, और कभी यश की प्राप्ति के लिए ही हम काम करते है। यश-प्राप्ति की इच्छा, समाज मे प्रतिष्ठा प्राप्त करने की भावना, लोग हमे कुछ समझे यह भावना---हमारी सबसे अधिक प्रबल जन्मजात वृत्ति अथवा मूल भावना है। विचारको के अनुसार यश प्राप्ति की इच्छा मानव-मन की सबसे बडी दुर्बलता है। यह जन्म के साथ ही उत्पन्न होती है और जन्म के साथ ही समाप्त होती है।

उपनिषदो मे लिखा है कि जीवन के समस्त कार्य-कलाप मुख्यतया तीन ऐषणाओं के द्वारा प्रेरित होते है। ऐषणाएँ है-- पुत्रेष्णा अर्थात् पुत्र-प्राप्ति की इच्छा, वित्तेष्णा अर्थात् धन प्राप्ति की इच्छा तथा लोकेष्णा अर्थात् यश प्राप्ति की इच्छा। विचार करने पर विदित होता है कि इन तीनो के मूल में आत्म की सुरक्षा अथवा आत्म-प्रतिष्ठा की भावना ही कार्य करती है। पुत्र की इच्छा अपना वश चलाने के लिए, अपना नाम बनाये रखने के लिए होती है, धन की इच्छा कल की चिन्ता के कारण, भविष्य की सुरक्षा के हेतु की जाती है और लोक मे यश-प्राप्ति की इच्छा तो आत्म-प्रतिष्ठा की भावना के अतिरिक्त और कुछ है ही नही। कहने का तात्पर्य यह है कि प्रत्येक व्यक्ति अपने आप को कुछ समझता है। इतना ही नही, वह यह भी चाहता है कि अन्य व्यक्ति भी, समाज के भी, उसे कुछ समझे। जहाँ कहीं भी उसकी इस इच्छा में व्याघात पहुँचता है, उसके हृदय को धक्का लगता

है। कभी-कभी तो वह इस धक्के को सह लेता है और प्राय. वह अपने मार्ग में बाधा डालने वाले व्यक्ति का विरोधी बन जाता है। प्रथम प्रतिक्रिया के फलस्वरूप वैरण्य भावना का जन्म होना है, और दूसरी के फलस्वरूप व्यक्ति झगडालू बन जाता है। अगर हमारा बालक झगडालू स्वभाव का है तो हमें यह विचार करना चाहिए कि जिसके स्वभाव को इस प्रकार वना देने का मनोवैज्ञानिक कारण क्या है ?

प्रत्येक व्यक्ति अपना रग जमाना चाहता है, सब चाहते हैं कि उनका पौवा पॉच छटॉक का हो, सब लोग उनकी बात माने और हॉ मे हॉ मिलाये। अपनी इस भावना को व्यक्त करने के लिए प्रत्येक व्यक्ति पृथक् ढग अपनाता है। अत यदि हमारे अथवा हमारे बालक के स्वभाव मे यह विशेषता दिखाई देती है, तो हमें न तो लज्जित ही होना चाहिए और न परेशान ही। अपने आपको कुछ चीज समझना और दूसरे भी हमे कुछ चीज समझे, यह सोचना, मानव-स्वभाव का जन्म-जात गुण है।

ससार का शायद ही कोई ऐसा व्यक्ति हो, जो अपनी अक्ल के बारे में यह न सोचता हो कि आधी मुझ मे है और आधी मे सारी दुनिया। अपनी अक्ल सबको बडी मालूम पडती है। मेरे विचार से अपने आपको बुद्धिमान् समझने की मनोवृत्त कोई बहुत बुरी नही है। अगर प्रत्येक व्यक्ति अपने आपको मूर्ख और अक्ल से खारिज समझ बैठे, तो ससार की विचार-शक्ति ही नष्ट हो जाय। सब हाथ पर हाथ रख कर बैठ जाये। नई-नई खोजें कौन करे, ससार को नवीन विचारधाराएँ क्योकर प्राप्त हो सके ?

हम बच्चों को प्राय डाट देते है। बच्चा कोई नई बात कहना चाहता है, आपका कोई नया काम करना चाहता है। हम सोच ही नही सकते कि एक बालक भी अपने दिमाग से काम लेकर कोई नई बात सामने रख सकता है। हम उसे आँख अथवा हाथ दिखा देते है, उसकी आत्म-प्रतिष्ठा की भावना को आघात लगता है। वह उस नये प्रयास द्वारा आपसे प्रशंसा, सम्मान प्राप्त करने का

इच्छुक था, वह चाहता था कि आप उसका महत्व स्वीकार करे, परन्तु आपने उस ओर से मुँह फेर लिया। उसकी यह भावना दब गई। यही दबी हुई भावना अन्य रूपो मे प्रकट होती है। कभी वह जोर से चिल्ला कर आपको अथवा अन्य व्यक्तियो को भयभीत करना चाहता है, कभी किसी जानवर को तग करता है, कभी वह बन्दर, तोता अथवा बिल्ली को बन्द करना चाहता है। आपका बालक अगर इस प्रकार की हरकते और शैतानियाँ करता है, तो आपको निराश नही होना चाहिए। यह कभी नही सोचना चाहिए कि आपका बालक बुरा अथवा असाधारण है। आपको समझ लेना चाहिए कि उसकी आत्म-प्रतिष्ठा की भावना किसी समय दबा दी गई थी, यह इस प्रकार प्रकट हो रही है, सावधानी के साथ व्यवहार करने से बालक को ठीक रास्ते पर लाया जा सकता है। एक हिसक बालक को, एक ऐसे बालक को जिसकी प्रवृत्तियाँ हिसक हो गई है, जो दूसरो को सताने अथवा मारने से प्रसन्न होता है, एक कातिल भी बनाया जा सकता है और एक सफल शल्य-चिकित्सक भी। यह माता-पिता के ऊपर निर्भर है कि उस बालक के प्रति वे किस प्रकार व्यवहार करते है ? वे उसे समाज के लिए उपयोगी नागरिक बनाते है अथवा एक अभिशिल्प व्यक्ति ?

भावनाओ के प्रवाह और जल की धारा के प्रवाह की गति समान समझनी चाहिए। आप पानी की धारा को रोकने का प्रयास करते है, कुछ समय के लिए वह रुक भी जाती है, परन्तु जब उसे रोकने वाली शक्ति पर्याप्त नही रहती, तब वह धारा पहले की अपेक्षा अत्यधिक वेग के साथ निकल पडती है। एक चतुर व्यक्ति पानी की धार के सामने दीवाल खडी करके उसे रोकना नही चाहता, बल्कि अनेक उपायो द्वारा उसे उपयोग मे लाता है। एक चतुर व्यक्ति जल-प्लावन के दृश्य का विधान न करके पानी से चलाये जाने वाले कारखाने खडे करने की व्यवस्था करता है। बालक के प्रति भी हमे ठीक इसी प्रकार व्यवहार करना चाहिए। हमे चाहिए कि उसकी भावनाओ को बल-पूर्वक, डाट-डपट कर

अथवा मार-पीटकर दबाने का प्रयत्न कभी भी न करें । ऐसा करने से वे दब तो जायेंगी, परन्तु जब बालक बड़ा होगा और उसे अवसर मिलेगा, तब वे दुगुने वेग के साथ प्रकट होंगी । दमन होने वाली ये भावनाएँ ही आगे चल कर अपराधी एव पापी व्यक्तियों का निर्माण करती है । हम जब कभी अपने बालक मे इस प्रकार का अवगुण देखे, तब इस बात पर विचार करे कि उसमें यह आदत आई कैसे, तथा उसको इस शक्ति का उपयोग किस प्रकार किया जा सकता है ? मान लीजिए कोई बालक बहुत मारपीट करता है, हम उस बालक को किसी ऐसे उपयोगी कार्य में लगा सकते है जिसमे कोई औजार अथवा हथियार चलाना पडता हो । माता-पिता को चाहिए कि वे बालक से इस प्रकार की बाते कभी न कहे कि वह बडा ही निर्दयी है, उसकी ये आदत बहुत बुरी है, हमने ऐसा कम्बख्त अथवा अभागा बच्चा आज तक नही देखा, आदि । ऐसा कह कर हम उसके मन मे अपराध की भावना भर देते है । बालक अपने आपको अपराधी समझने लगता है, वह अपनी नजरो में गिर जाता है, उसमें हीनता के भाव जम जाते है और उसका जीवन दु:खी हो जाता है ।

बालक को किस काम मे लगाया जाय ? किस उपयोगी कार्य मे उसे लगाया जाय ? इस प्रश्न का उत्तर प्राप्त करने के लिए माता-पिता को प्रयास करना चाहिए । उन्हें अपने बालक की आदतों, उसकी प्रत्येक गति-विधि का सूक्ष्म निरीक्षण एव व्यापक अध्ययन करके यह मालूम करना चाहिए कि कौन-सा कार्य उसके स्वभाव के अनुकूल ठहरता है । अगर बालक को ठोक-पीट करने का शौक है, तो घर की चीजों की मामूली मरम्मत का काम उसे दे देना चाहिए । उसकी रुचि अगर इजीनियरी के काम करने की है, तो उसे बगीचे का काम दे देने से कुछ भी लाभ न होगा ।

एक बात और है, प्रत्येक स्थिति मे हमें धैर्यपूर्वक काम लेना चाहिए । हम उसे काम देते है, वह उस काम को बिगाड देता है, अथवा ठीक तरह से नही कर पाता, हमारा कर्तव्य है कि नाराज न होकर उसको यह बताये कि उस काम को ठीक तरह से कैसे

किया जा सकता है । बालको के साथ अगर धैर्यपूर्वक काम किया जाय, तो बालक अनेक उपयोगी कार्यो मे हमारी विपुल सहायता कर सकते है । वे भोजन बनाने में आपके सहायक हो सकते है, वे आपकी बाइसिकल अथवा मोटर साफ कर सकते है, वे आपके टूटे तालों की मरम्मत कर सकते है, आदि । हम एक ऐसे बालक को जानते है, जो बचपन मे राहगीरों के ईट मार दिया करता था और आज एक सफल कारीगर है । जो बच्चे मार-पीट में रुचि रखते हों, उनके माता-पिता को चाहिए कि वे बालक को अध्यापक बनाने का विचार छोड़ दे । वह बालक तो पुलिस अथवा पलटन का अफसर बनने के लिए उत्पन्न हुआ है।

ऐसी भावनाओं को एक अन्य प्रकार भी दूसरी ओर ढाला जा सकता है । बालक को किसी खेल में लगा देना प्राय: उपयोगी सिद्ध होता है । मान लीजिए आपका बालक अपने छोटे भाई-बहिनों को बहुत मारता-पीटता है । आप उसे मुक्के-बाजी के खेल मे लगा दोजिए । आप उसके लिए दस्ताने या एक पच बौल ला दें । उसकी शक्तियाँ उस गेद को मारने मे व्यय होने लगेगी, और भाई-बहिनो की ओर से उसका ध्यान हट जायगा । फुटबौल, हौकी, तैरना, कुश्ती आदि अनेक ऐसे खेल है जिनके द्वारा ऐसे नटखट, शैतान अथवा दगली बालको को राह पर लाया जा सकता है । आवश्यकता केवल इस बात की है कि हम थोड़ा प्रयास करके यह मालूम कर ल कि बालक का झुकाव किस ओर है ओर कौन-सा खेल इसके स्वभाव के अनुकूल पडेगा ।

बालक के अन्दर उमड़ती-घुमड़ती विरोध-भावना को एक अन्य प्रकार से भी सही रास्ते पर लाया जा सकता है । यह रास्ता अत्यन्त समाजपयोगी एव हितकर सिद्ध हो सकता है । आप अपने बालक की विरोध-भावना का कुशलतापूर्वक सचालन कीजिए, वह अन्याय, असत्य, शोपण, दमन आदि का विरोधी बन जायगा । आपका बालक अगर समाज के लिए अहितकर प्रत्येक बात के विरुद्ध खडा हो सकता है, तो इससे अधिक अच्छी बात क्या हो सकती है ? जो बालक हृदय से अन्याय और दमन का विरोधी

होगा, वही दलितो और शोषितो के उत्थान एव कल्याण के लिए आगे आ सकेगा । अगर विरोध करना आपके बालक का स्वभाव है, तो आपको चाहिए कि उसे अन्याय, अत्याचार, असत्य, भ्रष्टाचार, दुराचार आदि का विरोध करना सिखाने लगें ।

सारांश

आत्म-प्रतिष्ठा एव विरोध की भावनाओ को दुर्गुण मत समझिए । उनके कारण बच्चे की निन्दा न कीजिए । बालक की भावनाओ को समझने का प्रयास कीजिए और उन्हे उपयोगी बनाने का प्रयास कीजिए । भावनाओ का दमन प्रकृति के नियम के विरुद्ध है । भावनाओ का उन्नयन ही किया जा सकता है ।

शैतान एवं नटखट बालक को किसी उपयोगी काम मे लगा दीजिए, मार-पीट करने वाले को कुश्ती जैसे सघर्षशील खेल मे लगा दीजिए, विरोधी स्वभाव के बालक को अन्याय का विरोध करने की शिक्षा दीजिए। निराश कभी न हो । जिस समय उपचार समझ मे आये, तभी अभ्यास करना प्रारम्भ कर दे । अच्छा काम प्रारम्भ करने के लिए कभी देर नही होती है ।

पाठ १५

नुकसान और तोड़-फोड़

बालक बहुत-सी चीज तोडते-फोड़ते है, वे बहुत-सा नुकसान करते रहते है। माता-पिता इसके लिए उन्हे डाटते-डपटते और मारते-पीटते है। ऐसा प्रतीत होता है कि वे बालक से ज्यादा उन चीजों को प्यार करते है।

आप कहेगे कि मेरा अनुमान सर्वथा भ्रामक है। कदाचित् ही कोई माता-पिता चीनी के प्याले अथवा शीशे को बालक की अपेक्षा अधिक चाहता हो। मै पूछता हूँ तब फिर इन छोटी-छोटी चीजो की वजह से बालक को सजा क्यों दी जाती है? प्रश्न हो सकता है कि तब क्या बालक की आदत बिगड़ जाने दे? क्या उसे तोड-फोड करने और चीजो को बर्बाद करने की आदत डाल दी जाय? मेरा निवेदन है कि कोई भी बालक जान-बूझ कर कोई नुकसान नही करता हमारी आपकी तरह वह भी हरेक चीज को सम्हाल कर रखना चाहता है, गलती से नुकसान कर बैठता है। हम और आप जरा देर में गलती करते है, बालक जल्दी गलती कर बैठता है; आप विश्वास कीजिए गलती से नुकसान होने पर हमारी तरह बालक को भी अफसोस होता है।

जब हम से कोई गलती हो जाती है, तब हम चाहते है कि हमारे मित्र अथवा हमारे शुभचिन्तक हमारे प्रति सहानुभूति प्रदर्शित करे और उस नुकसान अथवा गलती को ठीक करने मे हमारी सहायता करे। बालक भी बिलकुल यही चाहता है। परन्तु उसको मिलती है सजा, डाट-फटकार तथा ठुकाई-पिटाई। अब आप ही विचारिए कि जब बालक से कोई गलती हो जाय, उससे कोई नुकसान हो जाय, वह कोई खिलौना तोड़ दे, चाय का प्याला फेक दे अथवा आपके कपड़े गन्दे कर देने जैसी कोई गलती कर दे,

तो उसके साथ सख्ती का वर्ताव करना अथवा उसे सजा देना किस हद तक मुनासिब है ?

बालक से कोई नुकसान हो जाता है अथवा उससे कोई गलती हो जाती है, हम उसे सजा दे देते है, बालक दु खी हो जाता है और उसके दिल को धक्का लगता है । उस पर दो प्रकार की प्रतिक्रियाएँ होती है । वह सोचने लगता है कि मेरी माताजी अथवा मेरे पिताजी किंवा जो भी उसे सजा दे (१) मेरी अपेक्षा वस्तु को अधिक चाहते है, और (२) उस वस्तु विशेष के प्रति उसके मन मे भय बैठ जाता है । मान लीजिए आपने काँच के गिलास में ठण्डाई रखी है, बालक से वह गिलास टूट जाता है । आप उसे सजा दे देते है । अब आप जब कभी भी उससे काँच का गिलास लाने को अथवा उठाने को कहेंगे, तभी उसके हाथ काँप जायेंगे, क्योंकि वह उसे उठाते हुए विशेष सतर्क और सावधान रहने की कोशिश करेगा । यह एक माना हुआ अनुभव है कि जब बहुत ज्यादा सावधानी बरतते है, तब नुकसान जरूर हो जाता है । अब आप ही बताइए कि सजा देकर बालक को क्या सिखा दिया ? आप जिस चीज के पीछे सजा देंगे, उसी चीज को देखकर अथवा उसी चीज का इस्तैमाल करते हुए यह सकपका जायगा और नुकसान कर बैठैगा । अत वस्तुओ को सुरक्षित रखने की दृष्टि से भी बालक को सजा देना गलत ठहरता है ।

तोड-फोड़ अथवा नुकसान कर देने के कारण बालक को सजा देकर कभी-कभी माता-पिता को जीवन भर पछताना पडता है । एक बार हमारे एक मित्र के घर दावत का आयोजन था । अतिथिवृन्द को शाम के ७ बजे का समय दिया गया था । शाम के ६॥ बजे के लगभग हमारे मित्र की पत्नी ने अतिथियो के बैठने के कमरे को सजाना शुरू किया । उनका लड़का भी वही खेल रहा था । उसने एक मेज पर बिछे हुए मेजपोश को खीच दिया उस पर रखा हुआ फूलदान टूट गया । देवी जी ने उस बालक के दो चाँटे जड़ दिये और बालक को बराबर वाले कमरे मे बन्द कर दिया । अतिथि लोग समय से आये, दावत हुई और

सब कार्य-क्रम सानन्द समाप्त हो गया। तब कही रात के दस बजे बालक की याद की गई। कमरे में वह बेहोश पडा हुआ था। उस हालत मे भी उसकी आँखो मे से आँसू बह रहे थे और वह बीच-बीच मे चीख पडता था। डाक्टरों का ताँता लगा, परन्तु बालक अच्छा न हो सका। रात बीतते-बीतते बालक चल बसा। आप समझ गये होगे कि कमरे के अँधेरे के कारण बालक के दिल पर चोट लग गई थी और वह उसे बर्दाश्त नही कर सका।

बालक जब कोई नुकसान कर दे, तब माता-पिता को चाहिए कि उसके मन मे विश्वास पैदा करे, उससे ऐसी बातें कहे जिनके द्वारा उसको प्रोत्साहन मिले, अगली बार चीज को सम्हाल कर उठाने का साहस कर सके। मान लीजिए आपका बालक एक तश्तरी तोड देता है, तो आपको चाहिए कि उसके हाथ मे एक और तश्तरी दे दे और उससे कहे कि हमे पूरा विश्वास है कि तुम इस तश्तरी को सम्हाल कर ले जाओगे। आप देखेगे कि आपका बालक एसा ही करता है। अगर आप यह कहेंगे कि 'देखो! अब तश्तरी मत तोड़ना' तो सम्भावना यही है कि वह तश्तरी को फिर गिरा देगा।

हमारा अवचेतन मन हमारे साथ खिलवाड किया करता है। हम जब विशेष सावधान रहना चाहते है, तभी हम घबड़ा जाते है और अपना आत्म-विश्वास खो बैठते है। ऐसी दशा मे हाथ-पैरो का काँप जाना और गलती हो जाना स्वाभाविक है। अगर आपको हमारे उक्त कथन पर विश्वास न हो, तो अनुभव करके देख लीजिए। आप एक चिट्ठी लिखने बैठ जाइये और संकल्प कीजिए कि आप उसमे कोई किसी प्रकार की काट-फाँस नही करेंगे। आप देखेंगे कि आप कहीं न कहीं एक दो ऐसे शब्द लिख जाते है, जिन्हे आपको काटना ही पडता है।

बालक जब कोई नुकसान करे, तब बालक और वस्तु दोनों की दृष्टि से माता-पिता को चाहिए कि अपने बालक से इस प्रकार

की बाते करे––"कोई बात नही है । नुकसान सबसे होता है । हम भी कभी-कभी गलती कर जाते है । अगली बार जरा सावधान रहना, नुकसान नही होगा ।" आप देखेगे कि आपकी इन बातो के फलस्वरूप बालक को प्रोत्साहन मिल जाता है, वह सम्हाल कर काम करने की कोशिश करता है और साथ ही आयन्दा आपकी चीज भी नही टूटती है । मान लीजिए आपके बालक से सुराही टूट जाती है । आपको चाहिए कि चिल्लाने-पुकारने मे शक्ति और समय नष्ट न करे, इससे कुछ भी लाभ न होगा । आपको चाहिए कि बालक के प्रति सहानुभूति दिखाये और उसे प्रोत्साहित करे । उससे कहे कि कोई बात नही है, इन टुकडो को उठा कर एक कोने मे रख दो और इस जगह को साफ कर दो । अधिक अच्छा हो अगर आप स्वय भी उन टुकडो को उठाने और जगह को साफ करने मे बालक की सहायता करने लग जाये ।

कुछ माता-पिता बालक के हाथ मे ऐसी चीजे देते है, जो जमीन पर गिरने से नही टूटती है । आजकल ऐसे काँच का सामान आने लगा है जो टूटता नही है । हमारे विचार से यह तरीका ठीक नही है । ऐसा करने से बालक इन्ही न टूटने वाली चीजो को इस्तैमाल करने का आदी हो जाता है । जब कभी उसे साधारण चीनी अथवा शीशे की चीजो का इस्तैमाल करना पड़ता है, तब उसकी दशा बहुत ही शोचनीय हो जाती है । वह उन चीजो को भी बिना टूटने वाली चीजों की तरह इस्तमाल करता है और एक के बाद दूसरा नुकसान करता है । मुझे याद है कि एक बार मेरे पिता जी ने मुझे टीन की स्लेट लाकर दे दी थी । मेरी यह आदत हो गई थी कि मै स्लेट को चाहे जहाँ पटक देता था । उस स्लेट को मै किताबों के साथ बस्ते मे रखा करता था । मै बस्ते को भी खड़े-खडे जमीन पर पटक देता था––कुछ आलस्य के कारण और कुछ अन्य लडकों को यह दिखाने के लिए कि मेरे पास ऐसी स्लेट है जो जमीन पर फेकने से नही टूटती है । इस आदत के फलस्वरूप आगे चल कर मेरी कई स्लेटे टूटी और बस्ते मे रखे हुए ज्यौमेट्री बौक्स कई बार खराब हुए । हम

अभ्यास के द्वारा ही प्रत्येक काम को करना सीखते है । बालक की भी यही दशा है । हम अगर उसे सीखने का मौका नही देगे, तो वह सीखेगा कैसे ? जब तक चाय का प्याला उसके हाथ से छूट कर टूट न जायगा, तब तक उसे यह बात कैसे मालूम होगी कि चाय का प्याला जमीन पर गिरने से टूट जाता है, तथा उसे प्याले को सम्हाल कर रखना चाहिए । 'ठगाकर ठाकुर बनना' ही ससार का नियम है । आप अगर बालक को टूटने-फूटने वाली चीजों से दूर रखेगे, तो उसे इन चीजों का कोई अनुभव नही हो पायगा । बडा होने पर उसे इन चीजो का इस्तैमाल करना ही पडेगा । अनुभव और अभ्यास के अभाव मे वह असावधान रहेगा ही, हानि होना आवश्यक है । ऐसी स्थिति मे बालक को आश्चर्य भी होगा और अत्यधिक सकोच भी । माता-पिता को भी बहुत निराशा होगी ।

सारांश

माता-पिता को चाहिए कि नुकसान अथवा गलती कर देने पर बालक को सजा न दे । उसे इस तरह से समझाये कि वह चीजो को अगली बार सम्हाल कर इस्तैमाल करने के लिए प्रोत्साहित हो उठे । हम सबने भी गलतियाँ की है और सीखा है । माता-पिता को इस प्रश्न का निर्णयात्मक उत्तर सोच लेना चाहिए—

हमे अपना सामान अधिक प्यारा है, अथवा अपने बालक का समुचित विकास ? आप अगर बालक को समुचितशिक्षा देना चाहते है, तो आपको अपनी चीजो के प्रति मोह कम करना होगा ।

पाठ १६

केवल अपनी ही सोचना

कुछ बालक प्रत्येक बात के बारे में केवल अपने आपको ही केन्द्र मानकर सोचते है, उनके लिए पारिवारिक बन्धन जैसी कोई वस्तु नही होती । एक तरह से उन्हे परिवार के किसी व्यक्ति से कोई सम्बन्ध नही होता । अगर उसका भाई बीमार है, तो उसे कोई मतलब नही । भाई की दवा लाना अथवा अन्य किसी प्रकार से उसकी फिक्र करना, वह अपना कर्तव्य नही समझता । अगर उसके भाई, माता, पिता आदि की किसी व्यक्ति से अनबन हो जाय तो इसका उसके ऊपर कोई असर नही होता । वह सोच लेता है कि मुझे क्या, मुझसे तो झगड़ा हुआ नही है । ऐसा बालक बड़ा होकर परिवार से अलग ही रहना चाहता है । अपनी आमदनी को वह स्वयं अपने तक, अपनी पत्नी तथा सन्तान तक ही सीमित रखना चाहता है । सारांश यह है कि इस श्रेणी के बालकों के लिए पारिवारिक उत्तरदायित्व जैसी कोई वस्तु नही होती । परिवार के अन्य सदस्य माता-पिता, भाई-बहिन आदि इसके बारे मे सोचने लगते है कि इसे कोई अच्छा ही नही लगता, इसे किसी से कोई मतलब नही है, यह अपने आपको न मालूम क्या समझने लगा है ?

आप सहमत होगे कि ऐसा व्यक्ति परिवार के लिए एक सिरदर्द बन जाता है, उसके कारण सब लोग परेशान और चिन्तित रहते है । पारिवारिक शान्ति की दृष्टि से यह स्थिति बहुत ही असन्तोषजनक होती है । विचारणीय प्रश्न है कि ऐसा क्यो होता है और उसका क्या उपचार है ?

वर्तमान युग में अपनी स्थिति के लिए प्रत्येक व्यक्ति को सघर्ष करना पड़ता है । आज का जीवन बहुत ही कठिन हो गया

है। प्रत्येक व्यक्ति को जीविकोपार्जन करना पड़ता है और प्रत्येक व्यक्ति सोचता है कि अगर किसी दिन मैं काम पर न जा सका, तो क्या होगा ? कदाचित् मै बीमार पड जाऊँ, तो क्या हो ? मै मर जाऊँ, तो मेरे बाल-बच्चो का क्या हो ? इन सब भावनाओ से प्रेरित होकर प्रत्येक व्यक्ति उपार्जन ही नही करता, बल्कि भविष्य के लिए बचा कर भी रखना चाहता है। परिणाम यह होता है कि 'मै केवल अपने ही लिए हूँ' वाली बात प्रत्येक व्यक्ति के मन मे घर कर जाती है और वह हद दरजे का मतलबी बन जाता है अथवा केवल अपने आप तक सीमित हो जाता है। अब प्रश्न यह उठता है कि तब फिर सब बालक ऐसे क्यो नही होते ? उत्तर यही है कि पहले तो दुनिया के सब आदमी समान कभी नही हो सकते और दूसरी बात यह है कि जो माता-पिता अपने बालको को अपने पैरो पर खडे होने का उपदेश देते रहते हैं, उनके बालक प्रायः अपने पैरों पर खडे होते ही चलते बनते है। जिन बालको को अपने बड़ो से अपेक्षाकृत कम सहायता मिलती है, वे अपने आपको अरक्षित समझने लगते है और फलतः आत्मकेन्द्रस्थ हो जाते है।

परिवार हमारे समाज की इकाई है। जब परिवार का ही यह वातावरण हो, तब समाज के वातावरण का अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है। जब परिवार ही सगठित नही है, तब हमारा समाज, जो एक बडे परिवार के समान है, किस प्रकार सगठित रह सकता है ? यही कारण है कि आजकल विश्व इतना छिन्न-भिन्न हो रहा है और हर घडी युद्ध के बादल क्षितिज पर मॅडराते रहते है। समाज की आवश्यकता है, संगठन करना चाहते है, तो हमे परिवार का सगठन करना चाहिए।

परिवार को संगठित करने का उत्तरदायित्व माता-पिता के ऊपर है। वे ही बालकों को परिवार और समाज के प्रति उत्तरदायी बना सकते है। जो बालक परिवार के प्रति उत्तरदायी होगा, वही सामूहिक उत्तरदायित्व की भावना का आदर कर सकेगा। माता-पिता को चाहिए कि वे शुरू से इस ओर ध्यान दे, वे ऐसी

कोई बात कभी न कहे, जिसके कारण बालक आत्मकेन्द्रस्थ हो जाय, वह यह समझने लगे कि मुझे किसी से क्या मतलब ? बालक के मन में यह बात कभी भी न आनी चाहिए कि उसे तो स्वय ही कुआँ खोद कर पानी पीना है, उसे किसी की सहायता प्राप्त न हो सकेगी। आप देखेंगे कि इस प्रकार के मनघुन्ना अथवा केवल अपने आप मे ही सीमित व्यक्ति वे ही बालक होते हैं जिनकी ओर से बडे लोग उदासीन रहे होते है। आप बालक को काम से लगाने की हर घडी सोचते रहिए, बालक पढना चाहता है—आप उसे रोजगार या हिल्ले से लगा दीजिए बालक सिनेमा जाना चाहता है—आप कह दीजिए कि कमाई करो तब सिनेमा देखना, बालक कोई नुकसान करे—आप यह भाषण कर दीजिए कि अपनी कमाई का दर्द आयगा, बालक किसी काम के लिए कहे—आप यह कह कर हाशिया चढा दीजिए कि जब अपनी बीबी से इतना काम लोगे तब मालूम पडेगी, आदि। ऐसी स्थिति मे आप सुनिश्चित रूप से विश्वास कर सकते है कि बालक बराबर इस विचार-धारा मे निमग्न है कि अच्छी बात है, अब तो कमाई करके ही दिखा दूँगा। अपनी पत्नी से ही काम करा दूँगा। जब तक मैं अपने पैरो पर खडा नही हो सकता हूँ, तब तक तो मुझे किसी तरह समय काटना ही है, बाद मे इन लोगो से बात नही करूँगा, आदि। ऐसा बालक बडा होने पर अगर अपने आपको परिवार का एक अग समझता है, तो दोष किसका है ? इसका साराश यह हुआ कि माता-पिता बालक के मन मे सुरक्षा की भावना भरते रहे, उसको समझाते रहे कि परिवार का प्रत्येक व्यक्ति समान है, सबको समान अधिकार प्राप्त है, प्रत्येक व्यक्ति परिवार के प्रत्येक सदस्य के लिए है, अत वह भी परिवार का एक अग है। परिवार के प्रत्येक व्यक्ति का उसके ऊपर और प्रत्येक व्यक्ति के ऊपर उसका अधिकार है। परिवार का प्रत्येक व्यक्ति जो कुछ भी उपार्जन करता है, वह समूचे परिवार के ही लिए करता है। प्रत्येक व्यक्ति के प्रत्येक पैसे में परिवार के प्रत्येक व्यक्ति का समान अधिकार है, आदि। पाठक, एक बात समझ ले। कहने से

हमारा तात्पर्य करने से है, अर्थात् तथावत् व्यवहार करने से है। अगर उपदेश द्वारा ही काम चलता होता, तो आज के दिन समस्त विश्व मे सुख-शान्ति का साम्राज्य होता। जिस दिन ससार की सृष्टि हुई है, सम्भवत उसी दिन से विश्व-बन्धुत्व और मानव-प्रेम के पाठ पढाये जाते रहे है।

'आत्मवत् सर्वभूतेषु' आदि उपदेश सहस्रो वर्षो से प्रचारित है। पर-उपदेश बहुत है, आचरण करने वाले बहुत थोडे है।

कुछ परिवारो मे हमने एक खास रिवाज देखा है। जो व्यक्ति कमाई करता है, उसको परिवार के अन्य सदस्यों की अपेक्षा अधिक अच्छा खाने को और पहिनने को मिलता है। उदाहरण के लिए, घर मे सब मिला कर दस सदस्य है, और केवल एक सज्जन गजाननजी कमाई करते है। गजाननजी के लिए परवल की तरकारी बनती है, तथा सबके लिए काशीफल अथवा अरबी की तरकारी बन जाती है, गजाननजी पूडी खाते है, शेष सब लोग रोटी खाते है गजाननजी के कपडे धोबी धोता है, शेप व्यक्तियो को स्वय कपडे धोने पडते है, आदि। इस प्रकार की दोहरी रहन-सहन अथवा दुभाँति परिवार मे प्राय इस प्रकार के बालक उत्पन्न कर देती है। जिन लोगो को अपेक्षा-कृत बुरा जीवन व्यतीत करना पडता है, वे कमाऊ पूत से ईर्ष्या करने लगते है और उस अवसर की उत्सुकतापूर्वक प्रतीक्षा करने लगते है, जब वे स्वय उसी प्रकार रह सकेगे। जब परिवार में 'एक हाँडी दो पेट' वाली स्थिति होती है, तब बालक प्रायः विद्रोही बन जाते है। वे अपने आपको अपमानित हुआ समझते है और अपने पैरों पर खडे होकर बदला लेने की किवा अपने आपको कुछ कर दिखाने की सोचने लगते है। इसके अतिरिक्त सीधा-सा उसूल है——बालक जो देखता है, वही करता है। अतः माता-पिता को चाहिए कि अपने परिवार मे इस प्रकार का दोरगा व्यवहार कभी भी न करे। अगर परिवार की स्थिति ऐसी नही है कि सबको अच्छा खिला-पहिना सके, तो हमारे विचार से स्वय

भी बढिया खाने-पहिनने का विचार छोड देना चाहिए । बालक जब आपको परिवार के लिए त्याग करते हुए अथवा कष्ट सहते हुए देखेगा, तभी वह स्वयं भी आपके लिए तथा परिवार के अन्य सदस्यो के लिए कुछ करने की बात सोच सकेगा । हाँ, एक बात अवश्य है, आपको काम पर (दफ्तर, बाजार आदि) जाने के लिए साफ और मुनासिब कपडे अवश्य चाहिए । आपको चाहिए कि परिवार के समस्त व्यक्तियों के सम्मुख स्थिति स्पष्ट कर दे, और उनका विश्वास प्राप्त करने के पश्चात् ही उनसे अच्छे कपडे पहिने । आपकी विवशता के प्रति प्रत्येक व्यक्ति की सहानुभूति होगी और अधिकार-भावना के प्रति ईर्ष्या ।

आपको चाहिए कि आप अपने बालक को अपने बराबर वाले बालको के साथ खूब हिलने-मिलने दें । ऐसा होने से वह सबके साथ रहने का आदी हो जायगा, अकेले रहने की आदत उत्पन्न ही न होगी । इसके अतिरिक्त आप अपने व्यवहार द्वारा उसके सम्मुख मिल-बाँट कर खाने और रहने के उदाहरण प्रस्तुत करे । माताजी अगर मिठाई के डिब्बे को अलमारी में बन्द करके रखती है, और सब लोगों को समान रूप से उसे खाने का अवसर नही मिलता है, तो आप ही विचारिए कि बालक अपनी कोई चीज किसी को क्योंकर देगा ? इसी प्रकार, अगर माता-पिता अपने बालकों के बीच भेद-भाव बरतते है, तो फिर उनके बालक समानता का व्यवहार करना क्योकर सीख सकेगे ? मान लीजिए, मैं अपने पुत्र राम को दूध पिलाता हूँ और लडकी मुन्नी को केवल चाय देता हूँ, तो आप ही बताइए कि मेरे बच्चे आपस में मिल-बाँट कर खाने-पीने की आदत कहाँ से सीख सकेगे ?

आप अगर बालक के लिए कोई चीज नही खरीद सकते है, तो आपको चाहिए कि उसके सम्मुख सब हिसाब रख दे और उसको यह समझा दें कि आप केवल विवशतावश ही ऐसा कर रहे है । उनकी कही हुई चीज न लाने का कारण किसी प्रकार का द्वेष अथवा किसी प्रकार की अप्रसन्नता नही है ।

हमारी तरह बालकों के भी मित्र होते है और वे भी अपने मित्रो को अपने घर बुलाना चाहते है। हमने देखा है कि कुछ माता-पिता इस ओर आपत्ति करते है. वे नही चाहते कि उनके बालकों के मित्र आये-जाये। माता-पिता के इस व्यवहार के कारण बालक को कष्ट होता है, वह समझने लगता है कि इस घर मे मेरा सम्मान नही है अथवा मेरी स्थिति सुरक्षित नही है। मान लीजिए, आपका बालक अपने किसी मित्र को अपने घर आमन्त्रित करता है, और आप इस प्रकार की बाते कहने लग जाते है—वाह! इनके भी दोस्त है! इस उम्र मे हमारा तो कोई दोस्त न था, मुझे यह सब पसन्द नही है, आदि। ऐसी स्थिति मे बालक सोचने लगता है कि पिताजी के दोस्त तो रोज आते रहते है, परन्तु मेरे दोस्त इस घर मे नही आ सकते, इस घर मे मेरा कोई अस्तित्व नही है, मुझे जल्दी से ऐसा प्रबन्ध कर लेना चाहिए ताकि मैं अपने मित्रो को अपने घर बुला सकूँ, आदि। अत: माता-पिता को चाहिए कि बालक को परिवार का एक सम्मानीय सदस्य समझे और अपने मित्रो को आमन्त्रित करने की पूरी स्वतन्त्रता दे। इतना ही नही, बालक के मित्रो मे रुचि ले, उन्हे अपने परिवार का सदस्य समझे, उनका सत्कार करे कि वे भविष्य मे भी आये, आदि।

हम फिर दोहरा देना चाहते है कि हमारा कर्तव्य है कि हम अपने बालको के साथ समानता का व्यवहार करे, उन्हे परिवार का महत्वपूर्ण अग समझे. प्रत्येक कार्य मे उनका सहयोग ले, उनके प्रत्येक कार्य मे रुचि रखे, और इस प्रकार उनके मन मे सामूहिक उत्तरदायित्व के बीज बोने का प्रयत्न करे। यह काम एक दिन मे नही हो सकता, इसके लिए सतत् प्रयत्न की आवश्यकता है। हमारे घर मे अगर दिवाली का त्यौहार मनाया जा रहा है, तो बालक को असमर्थ बता कर एक ओर न बैठा दे। उसे भी यथा-शक्ति काम करने दे और कुछ नही तो वह दीपको को ही धो सकता है, रुई की बत्तियाँ उठा-उठाकर आपको दे सकता है, आदि। उसे ऐसा करने दे, थोड़ी देर बाद वह स्वय थक कर सो

जायगा । बालक के मन मे यह बात बैठ जाने दीजिए कि परिवार का कोई भी कार्य उसके सहयोग के बिना पूरा न हो सकेगा और परिवार का प्रत्येक व्यक्ति उसके प्रत्येक कार्य मे हाथ बँटाने को सदैव तैयार है ।

सारांश

बालक को अपने परिवार का महत्वपूर्ण अग समझिए । उसकी शक्ति के अनुसार उससे प्रत्येक कार्य मे सहयोग लीजिए और उसकी भावनाओ का ध्यान रखिए । अपने परिवार को एक सहकारी सस्था के रूप मे देखिए ।

पाठ १७

हम भी दोषी हैं

प्रसिद्ध विचारक इमर्सन ने लिखा है कि "अगर तुम चाहते हो कि अन्य व्यक्ति परमात्मा मे विश्वास करने लगें, तो तुम्हें चाहिए कि अपने श्रेष्ठ व्यवहार द्वारा लोगो को दिखा दो कि परमात्मा हमे वैसा बना सकता है।" *इसका तात्पर्य यह है कि भाषण अथवा उपदेश का प्रभाव बहुत कम पडता है, सच्चा प्रभाव डालने के लिए उदाहरण अथवा आदर्श प्रस्तुत करने की आवश्यकता है। हमे चाहिए कि बालक के सम्मुख जब भी कोई काम करे, अथवा कोई बात कहे, तो बहुत अच्छी तरह सोच-विचार ले। जिन बातो को हम मामूली अथवा व्यर्थ समझते है, उनका कभी-कभी बालक के ऊपर बहुत बुरा प्रभाव पड़ता है।

आप बालक से कहते है कि मै अपने दर्जे में हमेशा अव्वल रहता था, पढने मे इतना तेज था किसी मे अस्सी से कम तो अक कभी आते ही न थे, आदि। आप ये बाते इसलिए कहते है ताकि बालक को प्रोत्साहन मिले, वह फर्स्ट आने की, ज्यादा नम्बर लाने की पूरी-पूरी कोशिश करे। परन्तु क्या आपने कभी यह भो विचार किया है कि आपकी इन बातो का बुरा असर भी पड सकता है? अगर आपका कहना झूठ है, तब तो बालक आपको झूठा समझ लेता है और झूठ बोलने को अपने जीवन का एक आवश्यक अग बना लेता है, और अगर आपका कहना सत्य है, तो बालक एक प्रकार के सकोच, एक प्रकार की हीनत्व-भावना से भर जाता है, और उसके अगों मे शिथिलता आ जाती है। वह सोचने लगता है कि मै अपने पिताजी की बराबरी कर नही सकता, अतः मेरा

* "If you want people believe in God, let people see what God can make you like."—Emerson.

पढना-लिखना बेकार है । स्पष्ट है कि आपके कहनेका उल्टा असर होता है । अब आप सहज ही समझ सकते है कि दिये के तले अँधेरा क्यो होता है ? ख्याति-प्राप्त व्यक्तियो की सन्तान सामान्य कोटि की अथवा उससे निम्न स्तर की क्यो होती है ?

मान लीजिए आपका बालक गणित मे १० मे ६ अक प्राप्त करता है और आप चाहते है कि वह १० में से१० अक प्राप्त करे । आप कहने लगते है कि "तू तो बड़ा गधा है, मुझे तो सदैव शत प्रतिशत अक प्राप्त होते थे" आपके इस कथन का बालक के ऊपर क्या प्रभाव पड़ सकता है, यह तो ऊपर बता ही चुके है। अब आप बालक को प्रोत्साहित करने के एक अन्य उपाय पर भी विचार कर लीजिए। आप उससे इस प्रकार की बाते कहना प्रारम्भ कीजिए, "देखो ! जब मै तुम्हारे बराबर था, तब मेरी भी लगभग यही हालत थी। परन्तु मैने हिम्मत नहीं हारी। मैने सोचा कि अगर मेहनत की जाय, तो मुझे शत-प्रतिशत अक मिल सकते है। मै जी-जान से जुट गया। और थोड़े ही समय बाद मुझे पूरे नम्बर मिलने लगे और मै फर्स्ट जाने लगा।" आपकी बात सुनकर बालक सोचने लगेगा कि पिताजी को मेरी योग्यता मे पूर्ण विश्वास है, तथा कठिन परिश्रम के द्वारा सब कुछ सम्भव है। आपका बालक समझ लेगा कि शतप्रतिशत अक प्राप्त करने का मार्ग उसके लिए भी खुला हुआ है। अगर आप सचमुच एक तेज विद्यार्थी रहे है, तो यह बात तो उसे बडे होने पर किसी न किसी तरह मालूम हो ही जायगी। तब आप उसकी श्रद्धा के पात्र बन जायेगे, भाषण देकर आप उसे भयभीत एव निरुत्साहित करते है।

हम कभी-कभी किसी काम को अथवा बात को भूल जाते है। मौका आने पर आपका बालक कहता है कि आपने ऐसा किया ही नही, और आप कहते है कि नही जरूर किया। यहाँ तक कि याद आ जाने पर भी आप अपनी भूल स्वीकार नही करते। बालक समझ लेता है कि अपनी टेक पकड लेना एक अच्छी बात है और वह जिद्दी हो जाता है। 'मूर्ख टेक गही सो गही' वाली लोकोक्ति इसी ओर संकेत करती है। अपनी भूल स्वीकार कर लेना साहस

का काम है, तथा आसपास के व्यक्तियों पर उसका अच्छा प्रभाव पडता है ।

आप अपने बालक को पढ़ाने लगते है । वह कोई ऐसी बात कहता है जिसके सम्बन्ध मे आप सहमत नही है । आप उसकी बात काट देते है । वह कहता है कि उसे स्कूल मे इस प्रकार बताया गया है, आप कहते है कि 'गलत है, तुम्हारे अध्यापक ने तुम्हे गलत बताया होगा ।' आपके इस प्रकार कहने के परिणाम-स्वरूप आपके बालक के हृदय में अपने अध्यापक के प्रति श्रद्धा कम हो जाती है । और अगर कदाचित् अध्यापक की ही बात सही निकले, तब? बालक आपको जिद्दी समझ लेता है और स्वयं जिद्दी बन जाता है । इसके अतिरिक्त, उसके हृदय में आपके प्रति कोई विश्वास नही रह जाता, वह समझ लेता है कि आप उसे गलत बात बता देते हैं । अतः माता-पिता को चाहिए कि बालक को कोई बात बताने के पहिले खूब अच्छी तरह से सोच-विचार कर लिया करे, उसको गलत बताने अथवा उसकी बात काटने के पहले खूब अच्छी तरह से सोच लिया करे कि कही हमारी ही तो गलती नही है ? अगर हमारा बालक जिद्दी हो गया है, तो हमें समझ लेना चाहिए कि इस अवगुण के दोषी हम ही है, हमने ही कभी किसी गलत बात के लिए जिद की होगी । अगर हम बालक का विश्वास करते है, तो वह हमारा विश्वास करता है, अगर हम अपनी गलती मान लेते है, तो वह भी अपनी भूल स्वीकार करते हुए सकुचित नही होता, अगर हम किसी बात के लिए जिद नही करते, तो हमारा बालक जिद करना नही सीखता । प्रत्येक बालक व्यवहार देखकर सीखता है, वह आपके आचरण के प्रभुत्व को स्वीकार कर सकता है, वह आपके रोब को नही मानेगा । 'हित अन-हित पशु हू पहिचाना' के अनुसार बालक भलीभाँति जाँच लेता है कि हमारे माता-पिता कितने पानी मे है ?

सफेद बालो की इज्जत होनी ही चाहिए, अवस्था का सम्मान होना ही चाहिए, किन्तु कुछ लोग इसका यह अर्थ समझ लेते है कि अवस्था के साथ अधिकार का अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है, उम्र

में बड़ा होने का मतलब सब तरह से बड़ा होना है, और इस प्रकार वयस्क व्यक्ति बालकों के ऊपर एक प्रकार का आधिपत्य स्थापित करने लगते है। बालक उनसे दूर होने लगता है, क्योकि वह उन्हे अपना मित्र एवं विश्वासपात्र व्यक्ति के रूप मे नही देख पाता है। इस प्रकार बालको और बडो के बीच मे भारी अन्तर हो जाता है।

कुछ लोग बालकों के सम्मुख अपने आपको परमात्मा के रूप में उपस्थित करना चाहते है, वे बालक को दिखाना चाहते है कि वे सर्वथा दोष-मुक्त है, उनमे न कभी कोई अवगुण था और न अब है। बालक उन्हे किसी भिन्न लोक का प्राणी समझने लगता है, और उनसे दूर ही दूर रहने लगता है। और जब उसको उनके किसी अवगुण का पता चलता है, तब वह उन्हे पाखण्डी किवा मिथ्याभाषी समझने लगता है। अब अगर वह हमारे प्रति अनुदार बन जाता है, तो उसमें दोष किसका है? माता-पिता को चाहिए कि बालक के ऊपर अपनी बुजुर्गी का रोब न जमाये, बल्कि बुजुर्गी के तजुर्बो के सहारे उसे बड़ा होने में मदद दे। हमारा बालक के मन मे हीनत्व-भावना भर देना बडप्पन नही है, उसको बडा बनाने में अपना योग देना ही हमारा बड़प्पन है।

सारांश

बालक पर रोब मत जमाइए। उसके साथ सच्चे मित्र की भाँति व्यवहार कीजिए, तभी आप उसका विश्वास प्राप्त कर सकेगे। आप अपने आपको उसके सम्मुख साधु-महात्मा के रूप मे प्रस्तुत करने का प्रयास कभी न करे। उसको कभी न कभी तो यह विदित हो ही जायगा कि आप महात्मा न हो कर उसी की भाँति एक सामान्य व्यक्ति है। तब वह आपको पाखण्डी समझने लगेगा और आपके प्रति अविश्वासी हो जायगा।

बालक से गलत बात कभी न कहे, अनिश्चित होने पर जिद न करे। इस प्रकार आपका बालक गलत कहने का आदी न हो पायगा और वह कभी भी जिद न करेगा।

पाठ १८

अधिकार-भावना

आपने खिलौनों से खेलते हुए बालक देखे ही होगे। आपने देखा होगा कि बालक अपने खिलौनो को बहुत सम्हाल कर रखता है। अगर कोई अन्य व्यक्ति उन खिलौनों को लेना चाहता है, तो बालक विरोध करता है। कारण स्पष्ट है; बालक उन खिलौनों को अपना समझता है। अपने-पराये की भावना मानव-स्वभाव का महत्वपूर्ण अग अथवा एक मूलवृत्ति है।

खिलौने ही क्या, उसकी इस अपने-पराये की मूलवृत्ति के दर्शन आपको अन्य स्थलों पर भी हो सकते है। बालक कभी कहता है कि यह मेरा तकिया है, कभी कहता है कि यह तश्तरी मेरी है, कभी कहता है कि पिता जी मेरे है, कभी कहता है कि यह बहनियाँ मेरी है, आदि। आप किसी भी बालक से यह कह दीजिए कि 'हम तुम्हारी माताजी को अपने साथ लिवाये ले जा रहे हैं' और फिर देखिए कि क्या प्रतिक्रिया होती है?

इस अधिकार-भावना का एक अन्य रूप भी है। जब बालक कोई चीज बनाता है, तब वह तुरन्त कहता है कि 'यह मैने बनाई है तथा यह मेरी है'। इतना ही नही अपने रा निर्मित वस्तु का स्वयं अथवा अपनी इच्छानुसार उपयोग भी करना चाहता है। हमारे घर मे एक छोटी-सी लडकी है। उसको पूरी बेलने का बहुत चाव है। वह चाहती है कि अपने द्वारा बेली हुई पूरियो को स्वयं खाये अथवा अपनी इच्छानुसार अपने नाना, नानी, पिता, चाचा आदि को खिलाये। उसके व्यवहार को देखकर आप तुरन्त कह देगे कि वह चाहती है कि उन पूरियो के ऊपर उसका, केवल उसका अधिकार रहे। आप भी अपने-अपने बालको की गतिविधियों का इस दृष्टि से अध्ययन कीजिए, आप देखेंगे कि प्रत्येक बालक कुछ

न कुछ करता है, बनाता-बिगाडता है, और स्व-निर्मित वस्तु को अपनी बनाकर रखना चाहता है। इतना ही नही, वह उस वस्तु को अच्छी समझता है। स्वय ही अच्छी नही समझता, बल्कि यह भी चाहता है कि अन्य व्यक्ति भी उसे अच्छा कहे। हमने आज तक कोई ऐसा बालक नहीं देखा है जिसने अपने द्वारा बनाये हुए मिट्टी के टेढ़े-मेढे लौदो की ओर से नाक-भौ सिकोडी हो। उन वस्तुओ की ओर संकेत करता हुआ बालक एक ही बात कहता है, 'कैसी अच्छी हैं! इससे तुम खेलोगे ?' अथवा 'इसे तुम खाओगे ?' आप सहमत होगे कि हमारी यह मूलवृत्ति आजन्म अपना कार्य करती रहती है। अपने हाथो से बनाई हुई वस्तु किसी को शायद ही अप्रिय लगती हो, अपने द्वारा किये गये काम में शायद ही कभी किसी को कोई दोष दिखाई देता हो, अपना बालक शायद ही किसी को कुरूप किवा कुलक्षणी प्रतीत होता हो। गोस्वामीजी ने मानव स्वभाव की इस मनोवृत्ति की ओर सकेत करते हुए ठीक ही लिखा है 'निज कवित्त केहि लागि न नीका। सरस होइ अथवा अति फीका।'

माता को चाहिए कि अन्य मूलवृत्तियों की भाँति बालक की इस वृत्ति का भी आदर करे, उसकी अधिकार भावना को समझने का प्रयत्न करें। अगर आप चाहते है कि आपका बालक अपनी छोटी-सी गुडिया को अन्य किसी बालक को दे दे, तो आपको चाहिए कि इस प्रकार की बातें करे कि बालक स्वय ही उस बालक को अपनी गुड़िया दे दे। आप इस प्रकार की बाते कीजिए, अथवा ऐसा वातावरण प्रस्तुत कीजिए कि आपका बालक उस अन्य बालक से प्रेम करने लगे। अगर आप चाहते है कि आपका बालक अपनी छोटी-सी साइकिल पर अपने छोटे भाई को बैठाले, तो आपका कर्तव्य है कि उस अवसर की प्रतीक्षा करे जब कि वह बालक स्वयं ही अपने छोटे भाई को अपनी साइकिल पर बैठाने के लिए उत्सुक हो उठे। ऐसी स्थिति में जोर-जबर्दस्ती करने का परिणाम सदैव हानिकर होता है। मान लीजिए आप बालक से गुड़िया छीनकर इस अन्य बालक को दे देते है तो ऐसी स्थिति में बालक

के हृदय को धक्का लगता है, उसकी अधिकार भावना पर चोट पहुँचती है और उसकी विरोध-भावना जाग्रत हो जाती है। आप विश्वास कीजिए कि आपका बालक अपनी जरा-सी चीज भी किसी को देते हुए सदैव झिझकेगा, और कभी भी उदारमना न बन सकेगा। जो माता-पिता छीन-झपट, डाट-डपट अथवा मार-पीट के द्वारा बालक को दानी अथवा उदार बनाना चाहते है, उन्हे समझ लेना चाहिए कि उनका बालक बडा होने पर किसी को अपना पाप भी न दे सकेगा। प्रत्येक व्यक्ति और बालक भी यही चाहता है कि उसकी चीज पर उसी का अधिकार रहे, तथा वही अपनी इच्छानुसार उसका उपयोग एव उपभोग करे। आप जब बालक से हर घड़ी यह कहते रहते है कि किसी की चीज लेते नही है, किसी की चीज छूते नही है, आदि। तब आपका बालक अपनी चीज किसी को क्योकर दे सकेगा ? हमे चाहिए कि अपने व्यवहार द्वारा ही बालक को शिष्ट एव उदार बनाने का प्रयास करे, अन्यथा नही।

कुछ माता-पिता यह चाहते है कि बालक के लिए खरीदी गई बढिया चीजे सम्हाल कर अलग रख दी जायें। बालक अगर उनसे खेलेगा, उन्हें छूएगा, तो वे खराब हो जायेगी। तब फिर उनके लेने से फायदा ? बालक को कोई खिलौना पसन्द आता है, आप उसे दो रुपये में खरीद लेते है और सम्हाल कर ऊपर अलमारी में रख देते है। आप ही विचार कीजिए कि आपका बालक क्योकर सन्तुष्ट हो सकेगा ! जिस वस्तु को वह छू ही नही सकता है, वह न तो उसकी है और न उसके लिए उसका कोई मूल्य ही है। कपडों आदि के सम्बन्ध में भी इसी दृष्टि से विचार करना चाहिए। जो कपडे बालक के है, उन पर बालक का पूर्ण अधिकार रहने दीजिए। वह चाहे जिस कपडे को चाहे जब पहने, तब तो कपडे उसके है, अन्यथा वह समझ लेता है कि कपडों पर आपका अधिकार है और आप उसके हाथ से बचाते है। वह उस दिन की प्रतीक्षा करने लगता है कि जब कपडों तथा अन्य वस्तुओं पर उसका अधिकार होगा और वह अन्य व्यक्तियों के हाथ उनसे न

लगने देगा। अत माता-पिता को चाहिए कि बालक के लिए साधारण वस्तुएँ ही खरीदा करे, ऐसी वस्तुएँ जिन्हे वे बालक के हाथों मे निस्सकोच सौप सके, जिन्हे वे बालक के हाथो नष्ट करा सके, जिनका उन्हे लोभ न लगे, जिन्हे सम्हाल कर ऊपर अलमारी में रखने के लिए उनका मन न छटपटाये। आप बालक की आवश्यकता की वस्तुएँ खिलौने इत्यादि खरीदकर बालक को दे दीजिए, और उनके प्रति उसे मनमानी करने दीजिए। बालक अपनी पसन्द को तथा अपने हित-अहित को भली प्रकार पहिचानता है।

आप बालक को अपनी चीजो की स्वय साज-सम्हाल, देख-भाल अथवा धरा-उठाई करने दीजिए, उसे अपनी इच्छानुसार कपड़े पहिनने दीजिए, मन-पसन्द खिलौनो से खेलने दीजिए, आपको बालक का व्यवहार सर्वथा आश्चर्यजनक प्रतीत होगा। शुरू मे कुछ समय तक बालक भले ही कुछ गडबड अथवा नुकसान करे, थोड़े ही दिनों बाद वह अपनी एक-एक चीज को बडी सावधानी के साथ रखने लगेगा। उसको अपना प्रबन्ध स्वय करने दीजिए। थोड़े ही दिनो बाद वह एक पैसे के तीन धेले भुनाने लगेगा। एक बात और है। अगर आपका बालक कोई खिलौना तोड देता है, तो उसकी जगह दूसरा लाने के लिए उतावले न हो उठिए जब वह समझ लेगा कि खिलौना टूट जाने से उसी का नुकसान होता है, जाँघिया फट जाने अथवा खो जाने से उसी के कपडों मे कमी आती है, तो वह तुरन्त ही सावधान हो जायगा। उसे भय होने लगेगा कि वह अगर इसी प्रकार नुकसान करता रहा, चीजे तोडता अथवा खोता रहा, तो एक दिन वह आ जायगा, जब कि उसके पास न एक भी खिलौना रहेगा और न एक भी कपड़ा।

उपर्युक्त ये बाते रुपये-पैसे के सम्बन्ध मे भी लागू होती है। बालक लगभग तीन वर्ष की अवस्था में रुपये-पैसे के महत्व को समझने लगता है। माता-पिता को चाहिए कि इस अवस्था के लगभग बालक को रुपये-पैसे रखने और खर्च करने की आदत सिखाने लगे। रुपये-पैसे रखने के लिए उसे एक डिब्बी अथवा

गोलक दे दे । वह उसमे अपने रुपये-पैसे रखे, और अपनी जरूरत की चीज खरीदते समय स्वय ही उसमें से पैसे निकाल कर दे। आप देखेंगे कि थोडे ही समय पश्चात् आपका बालक मितव्ययी अथवा कम खर्च करने वाला हो जाता है। वह देखता है कि कम खर्च करने से उसकी डिब्बी भरी रहती है और ज्यादा खर्च करने से वह खाली हो जाती है। उसकी अधिकार-भावना मितव्ययी होने के लिए उसको विवश कर देती है। बालक को अगर आप रुपये-पैसे से दूर रखेंगे, तो उसको रुपये-पैसे का महत्त्व क्योकर मालूम हो सकेगा ? जब तक उसे यह विदित न होगा कि खर्च करने से भण्डार खाली होता है, तब तक उसको रुपये-पैसे के प्रति मोह न हो सकेगा, उसके दिल मे पैसे के लिए दर्द न हो सकेगा।

धन से सम्बद्ध जीवन का एक अन्य पक्ष भी है। बालक को यह भी विदित होना चाहिए कि आपके साधन सीमित है। वह मनमाने ढग पर चाहे जितना खर्च नही कर सकता। इसके लिए माता-पिता को चाहिए कि अपने बालक के साथ अपनी आर्थिक स्थिति के सम्बन्ध मे यदा-कदा बातचीत करते रहे, अपने घर के खर्चों के बारे में उससे मशविरा करते रहे। माता-पिता प्रायः यह समझते है कि बालक से रुपये-पैसे के सम्बन्ध में क्या बात की जाय, जहाँ तक हो सके उसकी प्रत्येक आवश्यकता की पूर्ति कर दी जाय, घर की आर्थिक स्थिति के बारे मे उसे क्यों चिन्तित किया जाय ? आदि। परिणामस्वरूप बालक यह समझने लगता है कि रुपये कही से यों ही आ जाते है, मानो पिता जी के घर में रुपयों का पेड लगा है, अथवा रुपये प्राप्त करने मे किसी प्रकार की कठिनाई नही होती। बडे होने पर उसको धन-प्राप्ति की कठिनाई विदित होती है, तब एक दम से उसके हृदय को आघात पहुँचता है। ऐसे बालक बड़े होने पर या तो पहले सिरे के मक्खीचूस बनते है अथवा अव्वल दर्जे के फिजूलखर्च साबित होते है।

अब आप चाहते है कि आपका बालक बड़ा होने पर आय और व्यय में संतुलन रखने वाला व्यक्ति बने, तो आपको चाहिए

कि आप उसे अभी से रुपये-पैसे सौपने लगे, उनको रखना और व्यय करना सिखा दे। आपको यह देख कर आश्चर्य होगा कि आपका बालक थोड़े ही दिनों मे 'तेते पॉव पसारिए जेती लॉबी सोर' वाली लोकोक्ति चरितार्थ करने लगता है, वह कभी भी यह न चाहेगा कि उसका पिटारा एक क्षण के लिए भी खाली हो। अत: हमको चाहिए कि बालक को प्रति सप्ताह अथवा प्रति मास एक निश्चित धनराशि दे दिया करे और उसमे से उसे खर्च करने दे अन्यथा आप उसको किफायतसारी के ऊपर कितने ही व्याख्यान दीजिए, वह धन के महत्त्व को कदापि न समझ सकेगा, आप एक-एक पैसा देते समय मन को कितना भी मसोसिये, उसके दिल मे पैसे के लिए कभी भी दर्द पैदा न हो सकेगा। आप बालक के सामने आर्थिक कठिनाइयो की चर्चा कीजिए, वह उनके सुनने में बहुत रुचि लेगा और आपकी कठिनाइयो को सुलझाने की कोशिश भी करेगा। आपको स्मरण रखना चाहिए कि दूसरो की बातों में रुचि लेना हम सबको अच्छा लगता है। 'काजी जी शहर के अन्देशे से लटते है' कहावत के अनुसार स्वभाव से हम सब काजी है।

सारांश

बालक को अपना मित्र समझिए। उसकी अधिकार-भावना पर चोट मत कीजिए। किसी को कोई चीज देने के लिए उसे बिवश न कीजिए।

शुरू से उसको रुपये-पैसों का महत्व जानने दीजिए। उसके सम्मुख अपनी आर्थिक स्थिति के सम्बन्ध में बात करते हुए कभी सकोच न कीजिए। अपने अनुभव द्वारा उसको स्वय सीखने दीजिए कि अधिकार-भावना की सुरक्षा के लिए आय और व्यय का सन्तुलन अनिवार्य है।

पाठ १६

माँगने की आदत

आपका बालक आपके मित्र के घर जाता है। वहाँ उनके बच्चों को दालमौठ अथवा आम खाते हुआ देखता है। वह तुरन्त कह बैठता है, 'हमको भी दो, हम भी खायेगे।' आपका मिजाज बिगड़ जाता है, आप बालक को आँख दिखाते हैं। परन्तु वह नही मानता, अथवा डर के कारण चुप हो जाता है।

आपका बालक चाहे जब, चाहे जिससे, चाहे जो चीज माँगने लगता है। आपको उसकी यह आदत पसन्द नही है। आपका पारा चढ जाता है, आप घर पहुँचकर उसके ऊपर खूब नाराज होते हैं—'दिन भर खाता है, परन्तु फिर भी ऐसी बुरी नीयत है कि जहाँ देखो वहाँ खाने को माँगने लगता है, इसके पास इतने खेल-खिलौने है, परन्तु कल रम्मू की मोटर के लिए ही मचल गया। जी में आता है कि दो झाँपड़ मार दूँ, माँगना भूल जायगा। खबरदार जो आज पीछे किसी से कोई चीज माँगी, आदि।' आपका बालक आपकी सब बाते चुपचाप सुनता रहता है, कभी रो देता है और कभी आयन्दा न माँगने की प्रतिज्ञा करता है, परन्तु परिणाम कुछ नही निकलता। आप हताश और दुःखी हो उठते हैं। आपकी समस्या है कि बालक की यह बुरी टेव कैसे छुटाई जाय?

हमारा निवेदन है कि आदत छुटाने का तरीका सोचने के पहले आदत का कारण जानने की कोशिश करे। आपका सबसे पहले प्रश्न यह होना चाहिए कि 'मेरे बालक मे आखिरकार माँगने की यह बुरी आदत कहाँ से आ गई?' हमारा सीधा-सा उत्तर है कि बालक जो देखता है, वही करता है। माता-पिता जिस रास्ते पर चलते है, बालक उसी रास्ते पर चलने की पूरी कोशिश करता है। अतएव ऐसी स्थिति में आपको गम्भीरतापूर्वक यह विचार करना

चाहिए कि कही स्वयं आपके अन्दर तो यह अवगुण नही है ? कही ऐसा तो नही है कि आप माँगकर अखबार पढ़ते है, आप माँगकर पान-तम्बाकू खाते है, माँगकर बीड़ी-सिगरेट पीते है, माँगे की किताबों से काम चलाते है ? यदि ऐसा ही है तब फिर दोष किसका है ? ऐसी स्थिति मे बालक का मगता बन जाना स्वाभाविक ही है ।

आप कह सकते है कि अखबार, किताब, बीड़ी पान के माँगने मे क्या है ? खाने-पीने की चीजो के साथ इनका क्या मुकाबिला ? हमारा निवेदन है कि बालक तो केवल एक बात को देखता है, और उसको ज्यों का त्यों ग्रहण कर लेता है । उसने देखा कि आप माँगते है, वह भी माँगने लगा । वह वही वस्तु माँगेगा, जो उसकी जरूरत की है । उसको यह किसने बताया है कि अमुक वस्तु माँगनी चाहिए, अमुक वस्तु नही माँगनी चाहिए ? इसके अतिरिक्त हमारे समाज मे प्रचलित यह लोकोक्ति 'जो चाहे माँगा तू भीख, तो तमाखू खाना सीख' भी इसी प्रवृत्ति की ओर सकेत करती है । 'माँगना' माँगना है, क्या तम्बाकू और क्या रोटी ? अगर आप चाहते है कि आपका बालक मगता न बने, कभी किसी के आगे हाथ न फैलाये, तो आपको चाहिए कि प्रत्येक वस्तु (बीड़ी, सिगरेट, तम्बाकू, अखबार आदि) को माँग कर प्रयोग करना तुरन्त छोड दें ।

कुछ महानुभाव कह सकते है कि वाह ! यह भी कोई बात है ! हम अखबार माँग कर पढ़ते है, तो हमारा लडका रोटी माँग कर खाने लगेगा ? हम इस स्थिति को कदापि सहन न करेगे । मार-मार कर ठीक कर देगे । मारने के विषय में हम अन्यत्र लिख ही चुके है । आप में उसकी अपेक्षा अधिक शक्ति है, आप उसका दुरुपयोग कर लीजिए । परन्तु इसका परिणाम क्या होगा ? आपके बालक की हीनता की भावना उसको आपके प्रति विद्रोही बना देगी । वह आपसे घृणा करने लगेगा तथा आपसे बदला लेने के मन्सूबे बाँधने लगेगा । इतना ही नही जिद करके, मचल करके वह अपनी हीनत्व-भावना को व्यक्त करने लगेगा । आप उसके प्रति जितनी

कड़ाई का व्यवहार करते जायेंगे, अपना प्रभुत्व स्थापित करने के लिए वह उतना ही अधिक दृढ़-प्रतिज्ञ होता जायगा। हमने ऐसे दृश्य प्राय देखे है जब कि पिताजी बालक को मारते हुए पूछते जाते है 'फिर माँगेगा ?' अथवा 'फिर करेगा ऐसा ?' और बालक जोर-जोर से रोते हुए जवाब देता जाता है, 'हाँ हाँ करूँगा, मार ही तो डालोगे, लो मार डालो !'

आप अगर कभी किसी से कोई वस्तु नही माँगते है, और बालक के मगता हो जाने का कारण आपकी समझ मे नहीं आता है, तब भी आपको न तो निराश ही होना चाहिए और न क्रोध ही करना चाहिए। आप विश्वास रखिए कि कारण कही आस-पास है। परिवार का कोई अन्य व्यक्ति, जिसका बालक अनुकरण करता है, तथा जिसको बालक ने अपना आदर्श मान रखा है, कुछ चीजे माँगकर अपना काम चलाता है। फिर भी अगर आप ठीक कारण का पता नही चला पाते हैं, अथवा उसकी इस बुरी आदत का कारण कोई ऐसा व्यक्ति है, जिस पर आपका कोई वश नही है, तब भी आपको मारपीट वाला रास्ता नही अपनाना चाहिए। आपको चाहिए कि अपना उदाहरण प्रस्तुत करते हुए बालक को माँगकर काम चलाने की आदत से उत्पन्न होने वाले अवगुण समझा दे। आप बालक को भिखारी दिखाये और बताये कि 'दर-दर दुत्कारे जाने वाले इन व्यक्तियों ने इसी तरह मिठाई आदि माँग कर भीख माँगना सीखा है, तुम भी अगर बडे होकर भिखारी बनना चाहते हो, तब तो बात दूसरी है, तुम्हारी इच्छा ! परन्तु अगर तुम बड़े होकर हमारी तरह रहना चाहते हो, तो यह बुरी आदत छोड़ दो।' आप देखेंगे कि आपके बालक के ऊपर आश्चर्य-जनक स्वस्थ प्रतिक्रिया होती है।

सारांश

आप कभी भी किसी से कोई चीज न माँगे। आपको माँगकर काम चलाते हुए देखकर आपका बालक मगता बन जायगा।

मारपीट करके उसे अपना शत्रु न बनाये। समझा-बुझा कर काम ले और अपना उदाहरण प्रस्तुत करे।

पाठ २०

जल्दी न करें

हरेक काम का समय होता है। हरेक काम के पूरा होने मे एक निश्चित समय लगता है। अगर कोई खीच-तान करने की कोशिश करता है, तो नुकसान होता है। आपने अपने बगीचे मे गेदा बो रखा है। उसमें दो कलियाँ लगी हुई है। आवश्यक धूप, हवा, पानी आदि प्राप्त करने के पश्चात् ही निश्चित अवधि के पश्चात् उनके फूल बन सकेगे। आप अगर उनकी पत्तियों को खीच कर जबर्दस्ती फूल बनाना चाहेगे, तो जो परिणाम होगा, उसकी कल्पना आप स्वय कर सकते है। पत्तियाँ टूट कर गिर जायेगी। फूल बनना तो दूर रहा, कली भी नष्ट हो जायगी। बिलकुल यही बात बालक के विषय मे भी समझ लेनी चाहिए। हम अन्यत्र निवेदन कर चुके है कि बालक बगीचे मे उगने वाले पौधों के समान होते है। उन्हे विकसित होने के लिए पूरा अवसर दिया जाना चाहिए। बालक के अभिभावक एव अध्यापक तो उनकी रक्षा करने वाले माली के समान है।

शका हो सकती है, तब क्या माता-पिता बालक को बड़ा करने की बिलकुल चिन्ता छोड़ दे ? हमारा अभिप्राय यह नहीं है कि माता-पिता बालक के लालन-पालन की ओर से उदासीन हो जाये। हमारा निवेदन है कि उन्हे बगीचे के पौधो की भाँति बढने दे और फूलों की भाँति विकसित होने दे। माली प्रत्येक पौधे के लिए खाद, पानी, हवा आदि की व्यवस्था करता है, वह जानता है कि अमुक पौधा किस स्थान पर ठीक रहेगा और वह पौधे की आवश्यकता के अनुसार ही पानी आदि का प्रबन्ध करता है। इतना ही नही, जब कोई पशु अथवा पशुवत् आदमी उस पौधे को हानि पहुँचाना चाहता है, तब वह दौडकर उसकी रक्षा कर लेता है तथा जब उसकी टहनियाँ इधर-उधर फैलने लगती है, तब वह

उनकी काट-छाँट कर देता है। बस, बालकों के प्रति अभिभावकों का कर्तव्य ठीक इसी प्रकार है। हमे चाहिए कि बालकों के विकास के लिए उपयुक्त वातावरण प्रस्तुत करे, उनकी आवश्यकताओ की पूर्ति करते रहे, उन्हे कुमार्ग पर जाते देखकर उनकी सहायता करे, खतरा उपस्थित होने पर उनकी रक्षा करे और स्वाभाविक गति से उन्हे बडा होने दे, फूलने व फलने दे। जल्दबाजी करते समय कली और फूल वाली बात याद रखे। अगर आपके पडौसी का बालक १५ वर्ष की अवस्था मे दसवाँ दर्जा पास कर चुका है, और आपका बालक १४ वर्ष का हो चला, परन्तु अभी छठवें दर्जे मे ही है, तो इसमें चिन्तित अथवा निराश होने की क्या बात है? घबड़ाने से अथवा मारपीट करने से कोई लाभ न होगा। ऐसा करने से आपके बालक के मन को धक्का लगता है, उसके मन के ऊपर एक बोझ-सा हो जाता है और वह अपने आपको हीन समझने लगता है। ऐसी स्थिति मे आपको दो बातो पर विचार करना चाहिए--(१) प्रत्येक व्यक्ति का विकास भिन्न प्रकार से होता है। अतः किसी की बराबरी करना प्रकृति के नियम के विरुद्ध है तथा (२) हमे अपने बालक के मन्द-बुद्धि होने का कारण खोजना चाहिए।

यह बात अवश्य है कि समाज के कुछ नियम है, और हमें उनका पालन करना पडता है। हमारा बालक भी उनसे बद्ध है, परन्तु हमारा निवेदन केवल यही है कि हमें उन नियमो को अपने बालको पर लागू करते समय अधिक से अधिक कोमलता और सहानुभूति बरतनी चाहिए।

सारांश

बालक का स्वाभाविक विकास होने दीजिए। जल्दी करने से हानि होने की अधिक सम्भावना है। उसके विकास के विषय मे विशेष चिन्तित न हो। 'समय आने पर सब हो जायगा' वाला सूत्र याद रखे।



पाठ २१

उपसंहार

आप अपने बालक को एक स्वतन्त्र व्यक्ति के रूप में देखिए और उसके प्रति एक सच्चे मित्र की तरह व्यवहार कीजिए। कोई भी व्यक्ति समस्त नियमो का पालन नही कर सकता। बालक इस शाश्वत नियम का अपवाद नही है। वह भी गलती करता है। उसकी गलतियों की ओर अधिक ध्यान न दे, उनको अधिक महत्व देकर तिल का ताड न बनावे। केवल इस बात की कोशिश करे कि बालक को किस प्रकार समझा-बुझा दिया जाय। डाट-डपट करने से अथवा मारने-पीटने अथवा रोब दिखाने से बालक स्वय अपने से तथा आपसे घृणा करने लगता है। उसके अंग शिथिल हो जाते है तथा वह बदला लेने की सोचने लगता है। अगर कभी कोई ऐसी बात हो, जिसका उपचार आपकी समझ मे नही आ रहा है, तो चुप हो जाइए, उसकी ओर से मुँह फेर लीजिए। दण्ड न देने से उतनी हानि कदापि न होगी, जितनी हानि अनावश्यक रूप से दण्ड देने से हो सकती है। गलत बात बताने की अपेक्षा चुप हो जाना कही अधिक अच्छा है।

ससार के समस्त कार्य एक सुनिश्चित समय पर होते है। बालक का विकास भी एक पूर्वनिर्धारित क्रम के अनुसार होगा। हमारा कर्तव्य है कि उस क्रम के साधक बने, बाधक नही।

एक बडे दार्शनिक का कथन है कि 'पहले बुजुर्गो को शिक्षित किया जाना चाहिए।' *उसका कहना ठीक ही है, चूँकि हमारे बुजुर्गो को मनोवैज्ञानिक शिक्षा-प्रणाली अवगत नही थी, इसी कारण हमारे अन्दर इतने अवगुण भर गये हैं। परन्तु 'बीती ताहि बिसारि दे' के अनुसार हमे आगे की सुधि लेनी चाहिए। हमें

*Education should begin with the grand parents.

चाहिए कि अपने बालकों को ठीक तरह से ठीक शिक्षा दे। हमारा बालक बड़ा होकर जितने ही बड़े पद को प्राप्त करेगा, उतने ही अधिक व्यक्ति उसके व्यवहार से प्रभावित होंगे। हम यदि एक बालक को ठीक तरह से शिक्षित कर देते हैं, तो निश्चय ही हम समाज के प्रति अपने धर्म का पालन करते है।

हम चाहते हैं कि हमारे बालक सुखी रहे, परन्तु हमे यह तो समझ लेना चाहिए कि किन उपायो द्वारा वे सुखी हो सकते है। जब कभी ऐसी स्थिति उत्पन्न हो कि इस पुस्तक में बताये गये उपाय आपकी सहायता नही कर सकते है, तब आपको शान्त हो जाना चाहिए और मनोविज्ञान के किसी अधिकारी पण्डित की सहायता लेनी चाहिए। हमारे बालक ही भविष्य के अधिष्ठाता बनेगे। अत. उनका भविष्य ही हमारा भविष्य है। हमें चाहिए कि उनके हाथो में अपने भविष्य को सुरक्षित कर दे।

———